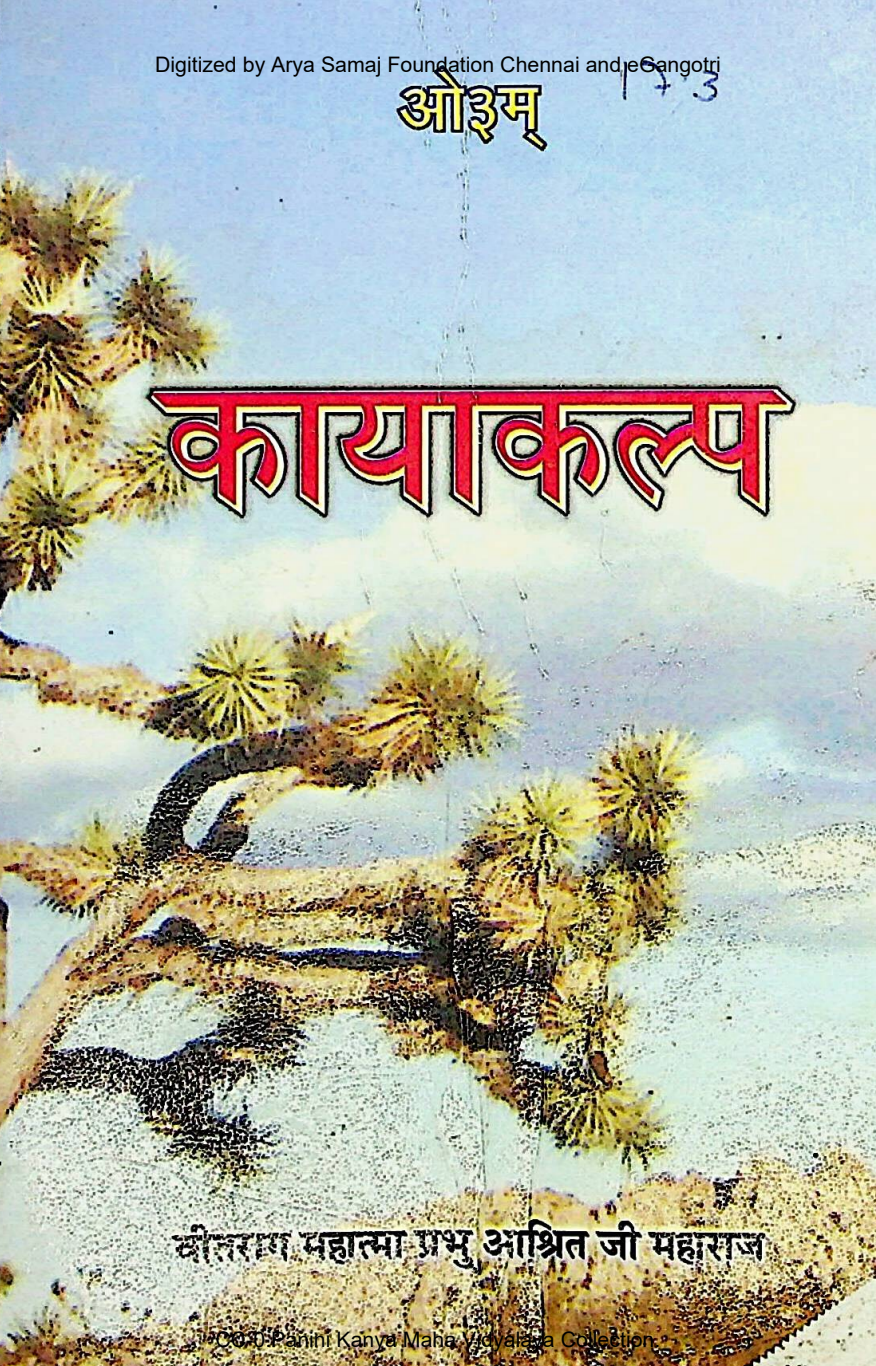
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

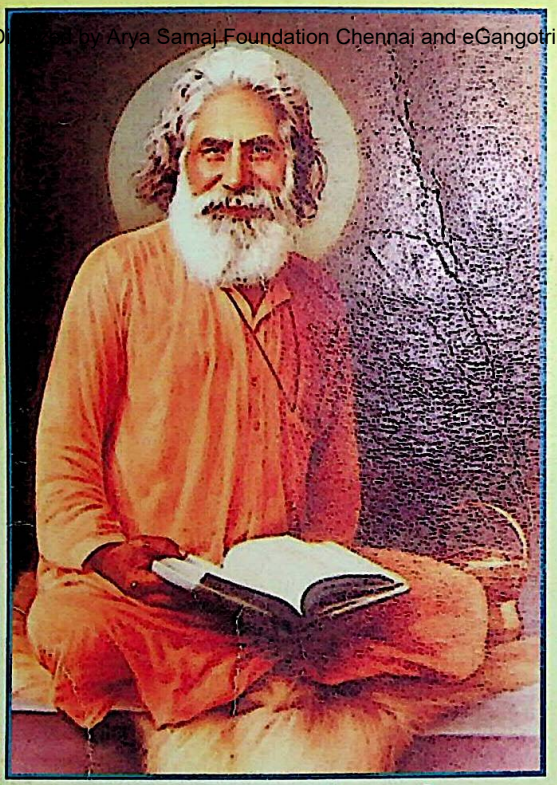
कायाकल्प



वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

जन्म १८८७—महाप्रस्थान १६ मार्च, १९६७

सरलता—सादगी के प्रतीक—सौम्य सन्त प्रभुआश्रित जी आज से लगभग एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्व जिन्होंने निर्धनता के आंचल में नेत्र खोले, तपस्या के आंगन में लोरी सुनी, तपती दुपहरी में पोथी पढ़ी, अनिकेत रह कर गृहस्थी संभाली, भूखे रहकर हरिभजन किया, मौन रहकर आराध्य को रिझाया, साधक बनकर योग को साधा, प्रचारक बनकर यज्ञ को विस्तार चिन्तन करके गायत्री को सराहा, पोथी पढ़—पढ़कर जीवन का बांचा, यश अपयश से परे रहकर नाम—धन अर्जित किया और अन्त में पंचतत्व की चदरिया को ज्यों की त्यों धरकर जीवन मुक्त हो गए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

काया कल्प

(जीवन–निर्माण)

वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज
की अनुभूतियां।



प्रकाशक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्य नगर, रोहतक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक एवं वितरक :
वैदिक भक्ति साधन आश्रम
आर्यनगर, रोहतक (हरियाणा)

लेखक : वीतराग महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज

मूल्य : २० रुपये

मुद्रक : मयंक प्रिन्टर्स, २१९९/६४, नाईवाला करौल बाग,
नई दिल्ली-५ दूरभाष : ५१५४८५०४, ५१५४८५०३
चलभाष : ९८११०४७९५३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो शब्द

आधुनिक युग के यशस्वी सन्त महात्मा प्रभुआश्रित जी महाराज समस्त मानव जाति के लिए एक वरदान सिद्ध हुए हैं। पूज्य गुरुदेव परम त्यागी, तपस्वी, कर्मठ कर्मयोगी एवं वैदिक मिशनरी थे। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन वेद-यज्ञ-योग के प्रचार-प्रसार में लगा दिया। परमात्मा की कृपा से आपकी प्रेममयी सुमधुर वाणी को जिसने सुना उसका कायाकल्प हो गया।

पूज्यपाद गुरुदेव जी महाराज नित अपनी दैनन्दिनी लिखा करते थे। महाराज जी के स्वर्गारोहण पश्चात् सन् १९४८-१९४९ तक अन्तर्ध्यान अवस्था में प्राप्त प्रसाद इस पुस्तक "कायाकल्प" में सुविज्ञ धर्मप्रेमी बन्धुओं के लाभार्थ संग्रहीत है।

महाराज जी की लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली थी। जटिल से जटिल गूढ़ विषयों को सरल और रोचक भाषा में मनभावन और अनुप्रेरक रूप में प्रस्तुत करते हुए इसी पुस्तक में लिखा है—

"पुण्य क्या है—मानो प्रभु को अपने अन्दर छिपाए हुए है। इसलिए सब मनुष्यों को अपना पुण्य नष्ट नहीं कर देना चाहिए, इसे सदा बढ़ाते ही रहना चाहिए। पुण्य में इतना बल है कि जब तक पुण्य फल का जोर साथ रहता है—वह मनुष्य जितना अहंकार करे, उसे जंचता है, जितना मोह करे उसे सजता है, जितना कामासक्त हो—उसे मस्ता है, परन्तु जब पुण्य समाप्त हुआ कि प्रभु ने मुख मोड़ लिया। अब सब देव उसे नष्ट करने में लग जाते हैं। कोई भी सहायता नहीं करता। जैसे वृक्ष की शाखा जब उससे पृथक् हो जावे तो सूर्य उसे जलाता है, वायु उसे सुखाती, मिट्टी उसे खा जाती है। वह फिर हरी-भरी नहीं होने पाती। पानी भी उसे बहा ले जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसलिए सब मनुष्यों को अपने पुण्य किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं करने चाहिएं। वाह रे पुण्य! तू बड़ा प्रतापी है। पर तेरा प्रताप है इसीलिए कि तुम में प्रभु छिपा बैठा रहता है।"

१६-३-१९६७ को महाराज जी स्वर्ग सिधारे तथापि साधनावस्था उपरान्त उनकी अमर लेखनी से निकले हीरे-मोती शब्द वाक्य पुस्तक रूप में आध्यात्मिक जगत् में धर्मप्रेमी जनों का पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। लगभग ६ दर्जन पुस्तकों के अनेकों संस्करण छप चुके हैं फिर भी माँग सदा बनी रहती है।

रंगीन कवर, अच्छा कागज और सुन्दर छपाई द्वारा पुस्तक को आकर्षक बनाने हेतु लघु प्रयास किया है, जिससे पुस्तक मूल्य में कुछ बढ़ोत्तरी हुई है फिर भी धर्मप्रचार की भावना से पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ही रखा गया है, जिससे सर्वसाधारण जन भी लाभ उठा सकें।

ज्यों-ज्यों पुस्तकों की बिक्री होती है उनकी आय से नई पुस्तकें छपवाई जाती हैं। आश्रम का तथा किसी सज्जन का इन पुस्तकों की आय से कोई काम नहीं, केवल वैदिक धर्म प्रचार की भावना से प्रकाशन कार्य किया जाता है इसलिए पूज्य श्रीमहात्मा जी की लिखी पुस्तकें सस्ती हैं। अतः इन को अपने इष्ट मित्रों तक पहुँचा कर पुण्य के भागी बनें।

महाराज जी के अन्तःस्थल से निकले भावों को पढ़कर सभी प्रेमीजन अभिभूत हो जाएं, की कामना के साथ पाठकों के हाथ में पुस्तक सौंपते हुए हमें हर्ष हो रहा है।

—दर्शन कुमार अग्निहोत्री
प्रधान
वैदिक भक्ति साधन आश्रम,
रोहतक

२२ फरवरी, २००५

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

सौभाग्यवान् साधको! आज आप के हाथ में वह पुस्तक आने लगी है जिसका नाम सेवक ने "कायाकल्प" तजवीज किया है। यद्यपि श्रीयुत वन्दनीय त्यागी तपस्वी वीतराग महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज जी की पुस्तकों के सम्पादन का कार्य विनीत ही कई वर्षों से कर रहा है, परन्तु इस पुस्तक के क्रम तथा विचारों के एकी तथा संगति–करण और हिन्दी लिपि में दर्शाने का कार्य श्री विद्याव्रत जी शास्त्री द्वारा किया गया है। श्री शास्त्री जी ने बड़े पुरुषार्थ तथा सावधानी से इस पुस्तक का संगति–करण किया और 'जीवन–निर्माण' नाम रखा।

श्रीयुत महाराज जी ने विनीत को अपनी कृपा दृष्टि से वंचित रखना उचित न समझा, इसलिए विनीत को आज्ञा की कि आद्योपान्त इस पुस्तक को पढ़कर प्रकाशनार्थ जहां कहीं शीर्षकादि के संशोधन का कार्य हो, कर दिया जावे।

विनीत ने बड़ी गहराई से इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा। 'जीवन–निर्माण' नाम मुझे नहीं रुचा, यद्यपि जीवन निर्माण की सामग्री इसके अंदर मौजूद है।

मानव चोला का मिलना अति दुर्लभ है और फिर इस चोले को प्राप्त करके इसके महत्व को समझना और सफल बनाना और भी कठिन है। एक लकड़ी का टुकड़ा आवास पड़ा हुआ किसी कीमत का नहीं परन्तु जब कारीगर के हाथ में आ जाए और वह उसकी मुरम्मत करे, तराशे, रंदा मारे, चरखी पर चढ़ाए और एक सुन्दर आकर्षण करने वाली वस्तु बना दे तो उसका मूल्य कितना बढ़ जाता है! मानव चोला सिया तो एक अद्‌भुत कारीगर ने है, परन्तु ऐसे मूल्यवान चोले को कैसे सुरक्षित रखा जाए और किस प्रकार इससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोक्ष रूपी विलक्षण अमर फल को प्राप्त किया जाए, यह बताने का महान् कार्य उस महान् दिव्य ज्योति के सुविज्ञ प्यारे भक्त के बिना और कौन कर सकता है? श्रीयुत महात्मा जी महाराज नाम के प्रभु आश्रित नहीं, प्रभु काम के भी आश्रित हैं। ज्ञान रूपी धाराएं जब–जब उनके लिए ब्रह्माण्ड से प्रवाहित होती हैं और जो–जो रत्न अपने बहाव में साथ लाती हैं, वह उनको चुन लिया करते हैं और अपनी दैनंदिनी में लेखबद्ध करके सुरक्षित रखते रहे हैं और अब तक भी वह शैली निरन्तर चल रही है। भ्रष्ट से भ्रष्ट और उच्च जीवन भी इस पुस्तक के पढ़ने से अपने विचारों तथा क्रियाओं में आमूल परिवर्तन पायेगा, इसलिए इस पुस्तक का नाम 'काया–कल्प' रखा गया है। गहरी से गहरी बुराई का स्वरूप, उसका रंग, परिणाम, स्वाद और उसके सुधार का इलाज बताया गया है। साधारण, असाधारण (अविद्वान्, विद्वान्) सब प्रकार के पाठकों के लिए ऐसी अनूठी पुस्तक मिलनी दुर्लभ है। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, संन्यासी तथा साधक उपासक सब के लिए यह उपयोगी पुस्तक है।

विचार सरल, सुगम और ग्राह्य हैं, बार–बार पढ़ने से आनन्द आता है।

पाठक वृन्द! सत्य मानिए कि श्री महाराज जी की एक स्वल्प पुस्तिका 'सप्त रत्न' थोड़े दिन हुए छपवाई गई, सारी की सारी मैंने ही हिन्दी में की और छपवाई, परन्तु अब जब मुझे उस पुस्तक की कथा करनी पड़ी तो उसके अन्दर किस प्रकार के रत्न जुटाए गए हैं, यह देख कर मैं चकित रह गया और लालसा पैदा हुई कि बार–बार कई बार इसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक की कथा की जाए—लुत्फ यह कि श्री महाराज जी भी कथा में उपस्थित होते रहे, वह अपने विचार उनको भी चकित कर देते थे। ठीक यही अवस्था इस पुस्तक में आपको मिलेगी। श्री शास्त्री जी ने पुस्तक को चार पीठिकाओं में बांटा है।

पहली पीठिका में व्यावहारिक जीवन के मौलिक सिद्धांतों तथा सरल बातों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय पीठिका में कई एक संस्कारों के रहस्योद्घाटन किए गए हैं। हमारे जीवन—निर्माण में संस्कार का क्या महत्व है और जाति के उत्थान तथा कल्याण में पर्व क्या पार्ट अदा करते हैं, इन बातों का उन्मोलन किया गया है।

तृतीय पीठिका में उपासना तत्वों तथा शैली का वर्णन है।

चतुर्थ पीठिका में विभिन्न प्रकार के आध्यात्मिक रहस्य खोले गए हैं, जो पढ़ने से सम्बन्ध रखते हैं।

ऋषि भक्तो! परमेश्वर के प्रेमियो!! यदि अपने जीवन को मानव जीवन—नहीं, नहीं, दिव्य जीवन बनाना है, तो इस पुस्तक का ध्यानपूर्वक स्वाध्याय करें, अच्छी—अच्छी बातों को अपने हृदय पटल पर अंकित कर लें। फिर देखिए कि आप का व्यवहार, आचार, विचार, आहार तथा आधार कैसे बदलता और किस प्रकार आप को मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य तक पहुंचाता है।

प्रभु करें कि हम इस योग्य हो जाएं कि इन रहस्य पूर्ण मार्मिक बातों को समझ कर जीवन में घटा सकें।

विनीत—

रोहतक
२६—५—१९५८

सत्य भूषण आचार्य
वैदिक भक्ति साधन आश्रम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

आदरणीय पाठक! प्रस्तुत पुस्तक 'जीवन–निर्माण' एक पुस्तक न होकर संग्रह–ग्रन्थ है, जिसमें भिन्न–भिन्न समय पर आए हुए 'डायरी के नोट' विषयानुसार क्रम में बांधे गए हैं। इसलिए विषयों की विभिन्नता और प्रवाह की भिन्नता दृष्टिगोचर होगी। यह सादा ढंग पर और सूत्र रूप में जीवन के निर्माण के भिन्न–भिन्न पहलुओं पर विचार सामग्री उपस्थित करती है। इसमें चार खण्ड हैं।

प्रथम खण्ड व्यावहारिक जीवन की बुनियादी बातों में पथ प्रदर्शन करता है।

द्वितीय खण्ड में कतिपय संस्कारों पर प्रकाश डाला गया है। संस्कारों और पर्वों का हमारे जीवन निर्माण में जो महत्व है–उसे दर्शाता है।

तृतीय खण्ड उपासना तत्वों की विवेचना पर आधारित है।

अन्तिम चतुर्थ खण्ड अनेक विध आध्यात्मिक रहस्यों पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार से यह एक विचार–सुमन संग्रह है, जिसकी विविध भांति की सौरभ, शोभा और आकर्षण जीवन के निर्माण में अपनी उपयोगिता आप प्रकट करेगी।

इस संग्रह की सामग्री की उत्तमता पूज्यवर गुरुदेव श्री प्रभु आश्रित जी महाराज की अपनी विशेषता है, पर विषयों के क्रम–निर्धारण आदि की त्रुटियों के लिए विनीत ही क्षमाप्रार्थी है।

विनीत–

पं. विद्याव्रत शास्त्री

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची

प्राक्कथन
भूमिका

प्रथम पीठिका–व्यवहार सम्बन्धी

१. पितृ–भक्ति प्रेम में तीन रुकावटें–जीवन मुक्त सन्तान १
२. मनुष्य की सन्तान और माता–पिता में मतभेद ३
३. पहली सन्तान कन्या हो तो अहोभाग्य समझें ४
४. गोद ली गई सन्तान की विश्वासपात्रता की पहचान ४
५. माता पिता नारियल सम कठोर ५
६. सन्तान में अहंकार वृत्ति का निरीक्षण ५
७. आज्ञा के उल्लंघन का कारण और फल ६
८. कम–समझ से काम लेने का ढंग ६
९. विचारधारा की एकता ७
१०. नारी–पूज़ा का रहस्य ८
११. सूक्ष्म प्राण का बन्धन सम्बन्ध ९
१२. गुरुजनों की सच्ची मान–वृद्धि १०
१३. मृत्यु और भाग्य ११
१४. काम मोह और प्रेम की भ्रांति व रहस्य ११
१५. प्रेम एक जादू है १२
१६. पूज्य–पूजा से विरक्ति क्यों? १२
१७. आत्माओं की एकता अहंकार समर्पण से १२
१८. धार्मिक चित्रों का उद्देश्य १३
१९. गुरुजनों के चित्रों की वास्तविक पूजा और फल १४
२०. पवित्र कार्य पवित्र फल १४
२१. आत्मविश्वास एक दृश्य १५
२२. प्रारम्भिक नकल करने का रहस्य वा उद्देश्य १६
२३. नगरवास या ग्रामवास में भेद–क्यों? १७
२४. भूमि–भूमि का भाग्य भिन्न १८
२५. अच्छा बुरा कौन? १८
२६. गणित सिद्धान्त से गुण ग्रहणादि की शिक्षा १९
२७. नौकर स्वामी के आवश्यक गुण २०
२८. व्यवहार कार्य की सफलता के पांच गुर २०
२९. धनी और निर्धन की मित्रता चिरस्थायी नहीं २२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३०.	प्रचारकों, उपकारकों में असहयोग क्यों?	२३
३१.	खण्डन का अधिकार	२३
३२.	महर्षि दयानन्द के उद्देश्य	२४
३३.	प्रचारक सुधारकों के दो आवश्यक गुण	२५
३४.	विद्या शिक्षा	२६
३५.	विद्यालयों का सुधार	२७
३६.	शत्रु की बेखबरी भली	३३
३७.	खुशामद के तीन कारण	३४
३८.	किसी का अपमान मत कर	३४
३९.	कमाई शुद्ध वा अशुद्ध	३५
४०.	स्वराज्य का साधन	३५
४१.	सेवा और सुधार	३६
४२.	व्यावहारिक बुद्धि और पारमार्थिक बुद्धि	३६
४३.	कमाई प्रारब्ध पर, रक्षा चतुराई पर	३७
४४.	आत्म सम्मान	३७
४५.	विचित्र मनुष्य	४२
४६.	अपना समझ कर ही सेवा कर	४२
४७.	दयानतदारी कब सफल	४२
४८.	मार्ग प्राप्ति कैसे?	४३
४९.	भण्डार सेवा की दुरूहता	४३
५०.	सफल जीवन–सुखी जीवन	४४
५१.	भाव से मनुष्य का यश	४५
५२.	विवशता के दान का फल, केवल तन सेवा से परोपकार का फल	४६
५३.	कार्य सफलता के तीन सहायक	४७
५४.	मर्यादा शिष्टाचार कब उन्नति कराने वाला	४८
५५.	घर आये मित्र की अवहेलना	४९
५६.	चार प्रकार का विनोद	४९
५७.	यथार्थवक्ता पर दोषारोपक तथा ब्रह्मनिष्ठ के अपमानकर्त्ता की दशा	४९
५८.	सिनेमा व्यसन लगने का कारण	५०
५९.	अन्याय के कारण	५१
६०.	सन्तोषी के दान का प्रभाव	५१
६१.	धन तेजहीन, धन बलहीन	५१
६२.	अज्ञान से प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति और अधिकार का प्रभाव	५२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६३. भिखारी और मजदूर का भेद ५२
६४. सत्यवादी कौन? ५२
६५. पाप क्यों और कैसे? ५३
६६. पाप न करने वाले और जप ध्यानादि करने वाले पापी में कौन अच्छा ५३
६७. सुधार किनका नहीं हो सकता ५४
६८. सत्याग्रह का लक्ष्य और साधन ५४
६९. ईर्ष्यालु ५५
७०. क्रोध अपमान लोभादि का अधिकार किसे? ५६

द्वितीय पीठिका–संस्कार पर्वादि सम्बन्धी

१. संस्कार एक रहस्य–तत्व विकास की दृष्टि से ५७
२. जात कर्म में सात बार मधुघृत चटाना आदि का रहस्य ५७
३. नामकरण में तिथि, नक्षत्र देवता का प्रभाव–विचार ५९
४. मुण्डन क्यों? ६२
५. मृतक पितरों का श्राद्ध जन्म दिवस व तिथि किन–किन की ६२
६. अहोई के त्योहार का मर्म ६३
७. विजय दशमी ६४
८. रक्षा बन्धन का महत्व ६६

तृतीय पीठिका–उपासना काण्ड

१. ब्रह्मचर्य एक व्रत है ७२
२. सामाजिक तथा आध्यात्मिक मार्ग की सफलता के भिन्न साधन ७३
३. विश्वास और श्रद्धा ७३
४. सत्य की प्राप्ति, सत्य में प्रेम और सत्य का पुजारी कैसे बना जाए? ७४
५. गुरु की आवश्यकता ७५
६. निःस्वार्थी प्रेमपात्र महाभाग्यवान ७५
७. शिक्षा का महत्व या उद्देश्य ७६
८. गुरु की स्पर्शनादि तीन शक्तियां और प्रभाव ७७
९. आशीर्वाद नम्र और श्रद्धालु भक्त को ७७
१०. गुरु शिष्य में शिथिलता और फल ७७
११. हमारा गुरु, माता–पिता के सम्बन्ध में किस प्रकार का? ७८
१२. अहंकार अर्पण का फल ७८
१३. भक्त और ज्ञानी : कर्म रत्तीभर ज्ञान मन भर ७८
१४. सद् व्यवहार और दुर्व्यवहार का दूसरे पर प्रभाव और स्वयं को फल ७९
१५. विनश्वर पदार्थ–सार्थक परिश्रम। विनश्वर अर्थ–सार्थक जीवन ८०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६. तन, मन, धन के यज्ञ ८०
१७. प्रभु के योग क्षेमवाहक प्रभु क्यों? ८०
१८. स्वतन्त्रता और निर्भयता ८१
१९. प्रभुभक्ति, योग, यज्ञ से अन्तःकरण शुद्धि ८२
२०. जिसके लिए हम, हमारे लिए वह ८३
२१. भक्ति के तीन प्रकार और प्रत्येक प्रकार के तीन चिह्न ८३
२२. दो प्रकार के पुरुष ८४
२३. कर्म, भक्ति और ज्ञान में रुचि की निशानी ८५
२४. भक्ति और ज्ञान की सापेंक्षता ८६
२५. श्रद्धा, भक्ति, प्रेम की एकता ८७
२६. बाह्य क्रिया का अन्दर समाना और अन्दर क्रिया का बाहर आना ८७
२७. जीवन के शिक्षा विषय ८८
२८. नम्रता और त्याग की महिमा ८९
२९. मानव जीवन और लोक परलोक का सुख (रूपक द्वारा) ९०
३०. किस का बल क्या है? ९१
३१. उद्देश्य का सच्चा रूप ९१
३२. प्रेम के प्रकार ९१
३३. प्रेम के भिन्न रूपों में अहंकार की दशा ९१
३४. आध्यात्मिक भूख ९४
३५. वरने वाला वरा गया ९५
३६. एक दूसरे की सम्पत्ति पर अधिकार ९५
३७. मनुष्य से देवता—नमन से; पुरुष से परमेश्वर—समर्पण से ९५
३८. प्रभु से सच्ची प्रीति ९६
३९. प्रभुप्रीति बिना साधन रुचि निष्फल ९६
४०. आश्चर्य ९७
४१. संसार क्या है? ९७
४२. जो तुध भावे सो भली कार, का अनोखा स्वरूप ९७
४३. शरीर उपासना में मन विषयों में ९८
४४. त्याग प्रेम अनुसार ९९
४५. मान श्रद्धा अनुसार, श्रद्धा विश्वास अनुसार १००
४६. सर्व व्यापक परमात्मा का अनुभव कैसे होगा १००
४७. अन्तःकरण सिंहासन पर भगवान् का आसन कब? १०१
४८. सांस—सांस नाम की माला १०१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४६. मनुष्य प्रभु की उपासना में सफल क्यों नहीं होता? १०२
५०. हमारे रोम–रोम में वासी के गुण हम में क्यों नहीं आते? १०३
५१. लोभी, अविश्वासी, अहंकारी, अस्वीकृत १०३
५२. प्रभु विस्मृति १०४
५३. उपासना के अन्त में आत्म निरीक्षण १०४
५४. विश्वास की कमी का कारण और फल १०५
५५. विश्वासी निश्चिन्त १०५
५६. पूर्ण विश्वास वाला १०६
५७. जाने बिना माने, माने बिना जाने १०७
५८. परमेश्वर को जानने और मानने वाले के चिह्न १०८
५९. पापवृत्ति का चिह्न १०९
६०. पाप से निवृत्ति और पुण्य में प्रवृत्ति १०९
६१. भय और प्रेम ११०
६२. दया और कृपा ११०
६३. भक्त में तीन गुण आवश्यक १११
६४. प्रकृति में परमेश्वर का अहम् १११
६५. मनुष्य जीवन परोक्ष ज्ञान अर्थ ११२
६६. विज्ञान की उत्पत्ति दो प्रकार से ११३
६७. भोगी और योगी ११३
६८. दो प्रकार का ज्ञान आध्यात्मिक, भौतिक ११४
६९. नाम के प्रभाव का रहस्य ११४
७०. नमस्कार का सच्चा स्वरूप ११५
७१. यश की चाहना क्यों? ११६
७२. अभिमान से गिरावट कैसे? ११७
७३. साधक के मार्ग में अहंकार बाधक है ११८
७४. क्रोध के चिह्न ११८
७५. सफल साधना, साधक सावधान ११९
७६. कर्म और ज्ञान का फल बार–बार १२०
७७. साधक के मार्ग में तीन बाधाएं १२०
७८. मान की मात्रा १२०
७९. मान सम्बन्धी पहाड़ जैसी भूल १२१
८०. त्याग दो, अपनो को भी; और कब? १२१
८१. सरल सहज सत्य–अति कठिन सत्य बोलना १२२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८२. साधक को चेतावनी १२३
८३. भेष के लिए चेतावनी १२३
८४. विश्राम कब? १२४
८५. पांच सुधारक—पाञ्चजन्य पुरोहित १२४
८६. बाहर अन्दर के शत्रुओं की आक्रमण विधियां और रोक १२५
८७. शत्रु पहिचान में भूल १२६
८८. सत्य, न्याय, दया के बाधक अवगुण १२६
८९. आहुति रहस्य १२७
९०. पुरुष की महानता और नीचता १२७
९१. संगत का प्रभाव १२८
९२. आत्मिक निर्बलता १२८
९३. मन की निर्बलता और दुर्बलता १२९
९४. मनुष्य की कमी १३०
९५. काम क्रोध, लोभ आदि की विविध प्रकार से विवेचना १३०
९६. किन पांचों से क्या हानि? १३०
९७. अहंकार के विविध रूप १३१
९८. अहम्भाव का प्रभाव १३१
९९. एक एक दो ग्यारह १३१
१००. कामादि के विचारों से रंग और स्वाद १३२
१०१. काम, क्रोध, लोभ के स्थान १३३
१०२. निन्दा प्रभाव १३३
१०३. पांच शत्रुओं की उत्पत्ति का समय १३३
१०४. दो प्रकार की अपवित्रता १३४
१०५. आध्यात्मिक रूप से प्रकृति की विकृति १३५
१०६. भाव संस्कार का असर १३६
१०७. आन्तरिक ध्यान में रुकावट क्यों? १३७
१०८. आहार की सावधानी १३८
१०९. साधकों को चेतावनी १३९
११०. सन्तोष और प्रेम की तुलना १३९
१११. भिक्षाटन में प्रायश्चित्त १४०

चतुर्थ पीठिका (आध्यात्मिक रहस्य प्रकरण)

१. इन्द्रियों की रहस्यमयी रचना १४२
२. कान और नासिका क्यों खुली रहती है? १४३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३.	विनाश और विकास कैसे?	१४४
४.	धर्म की लाग का प्रभाव	१४४
५.	दृष्टिभेद और फल	१४५
६.	कानों और वाणी सम्बन्धी चेतावनी	१४५
७.	एक दूसरे से प्रीति कब?	१४६
८.	योगी और रोगी की उदासीनता के लक्षण	१४६
९.	योगी और भक्त का भिन्न दृष्टिकोण	१४७
१०.	प्राण सम्बन्ध के चिह्न	१४७
११.	कहा, पर करता क्यों नहीं?	१४८
१२.	गणित विद्या से आध्यात्मिक शिक्षा	१४८
१३.	मनुष्य की विचित्रता	१४९
१४.	वाणी का बल	१५०
१५.	ईर्ष्या–स्पर्धा	१५०
१६.	आत्मा का आत्मा में प्रतिबिम्ब	१५१
१७.	प्राणियों में पूर्ण एकता असम्भव	१५१
१८.	जानना और ज्ञान का अन्तर	१५२
१९.	ब्रह्म और माता की सेवा निरपेक्षता कब और क्यों?	१५२
२०.	जीव की अल्पज्ञता (मुक्ति में भी)	१५३
२१.	सुधार की मूलभूत प्रेरणायें	१५३
२२.	मनुष्य की बहिर्वृत्ति–आत्मानुभव में बाधा	१५३
२३.	सुन्दरता और खूबसूरती में भेद	१५४
२४.	अन्दर के संग्राम में अन्दर का बल	१५५
२५.	दीनता प्रभु को भी अधीन कर देती है	१५५
२६.	भक्त की भगवान से प्रार्थना किस लिए?	१५५
२७.	भावना–अनुसार भक्ति का फल	१५६
२८.	ईश गुण विचार	१५६
२९.	विचार के प्रकार (साधन) साधना, तप	१५८
३०.	कर्म फल तो बराबर, पर भक्त तृप्त और सन्तुष्ट	१५९
३१.	आत्मदा बलदा तो केवल, भगवान, न कि अन्न	१५९
३२.	पुण्य संचय में जागरूकता क्यों?	१६०
३३.	हमारी मांग तीन प्रकार की	१६०
३४.	भौतिक और दैविक–आत्मिक रोगों का औषधि–नियम भिन्न	१६१
३५.	पृथ्वी नट शाला	१६१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६. मनुष्य और भगवान् के लेन देन में भेद १६१
३७. प्रभु लीला (भोग अवस्था में) १६२
३८. शान्ति और भय का नियन्त्रण १६२
३६. भगवान् की लीला—भगवान् की चार शक्तियों का फल, भक्त पर भिन्न १६३
४०. प्रभु लीला (उद्देश्य द्वारा नियन्त्रण) १६४
४१. आशीर्वाद शाप अकारथ कब? १६५
४२. आंखों में से नाक को घटाना—मुक्ति १६५
४३. विचार तरंग—(अतिथि सेवा के भावों का विश्लेषण) १६७
४४. वाणी संयम १६६
४५. मनुष्य को महान् बनाने वाली उसकी वाणी है १७०
४६. अतिथि को भोजन के चौके में क्यों? १७१
४७. सावधान रहो १७१
४८. किन—किन को एकान्त में आदेश दिया जाता है? कौन और किसको? १७३
४६. दिखावे और कपट की विवेचना १७३
५०. प्राणायाम और रहस्य १७४
५१. भंग—कच्ची साधना में १७७
५२. तीन प्रकार की सिद्धियां—इनके स्थान और रुकावटें १७७
५३. योगांगों से सिद्धियां १७७
५४. भर्गः धारण—अशान्ति निवारण १७७
५५. विपत्ति में नास्तिक कौन और विपत्ति में कृतज्ञ कौन? १७८
५६. भक्ति रस तो मिला, पर अवगुण नहीं मिटे। कब? क्यों? १७६
५७. व्रत में सावधान १७६
५८. नाम के दो विशेष अर्थ १८३
५६. अनुग्रह क्या और क्यों? १८४
६०. प्रभु प्रेरणा का अनुभव, प्रभु प्रेमी को मानसिक ग्रहण शक्ति अनुसार १८५
६१. प्रसन्नताएं तीन प्रकार की १८६
६२. ज्ञान, कर्म और भक्ति कब? १८६
६३. अमावस, पूर्णमासी की आध्यात्मिक महिमा १८७
६४. दिव्य प्रकाश और दिव्य शक्ति की प्राप्ति १८८
६५. कोष—कोष में संयम का फल १८८
६६. आत्मिक प्रेम प्राण प्रीति १८६
६७. निर्विकारता का अति सरल साधन १६०

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

हे परम पिता परमात्मा आप **(भूः)** प्राणदाता **(भुवः)** दुःखनाशक **(स्वः)** सुखस्वरूप हो। हम आपके **(तत्)** उस **(सवितुः)** सकल जगदुत्पादक **(वरेण्यं)** श्रेष्ठ, पूजनीय **(भर्गः)** दुष्टों को रुलाने हारे **(देवस्य)** दिव्यगुणयुक्त स्वरूप का **(धीमहि)** ध्यान करते हैं। **(यः)** जो आप **(नः)** हमारी **(धियः)** बुद्धियों को **(प्रचोदयात्)** सन्मार्ग की ओर प्रेरित कीजिये।

२. ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव।।

हे **(सवितः)** सकल जगदुत्पादक **(देव)** दिव्यस्वरूप परमात्मा **(नः)** हमारे **(विश्वानि)** सारे **(दुरितानि)** दुर्गुणों को **(परासुव)** हम से दूर करिये **(यत्)** जो **(भद्रं)** कल्याणकारी गुण है **(तत्)** उनको **(नः)** हमको **(आसुव)** प्राप्त कराइये।

३. ओं मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य। नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी।। ऋग. १०/११७/६।

वह **(अप्रचेताः)** मूढ़ मनुष्य **(मोघं)** पापपूर्ण (व्यर्थ) **(अन्नं)** अन्न को **(विन्दते)** कमाता है अथवा इकट्ठा करता है **(यो)** जो **(न)** न ही **(अर्यमणं)** राजा का **(पुष्यति)** कर देता है **(नो)** न ही **(सखायं)** प्राणीमात्र की सेवा में व्यय करता है। वेद भगवान् कहते हैं **(तस्य)** उसका (मैं) **(सत्यं)** सत्य **(ब्रवीमि)** कहता हूं **(इत्सं)** नाश **(बद्धः)** बंधा है अर्थात् उसका नाश निश्चित है। ऐसा करने वाला केवल **(केवलादी)** मनुष्य जो अपनी ही तृप्ति करता है, ऐसा **(केवलाघो भवति)** केवल पाप का भक्षण करने वाला होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म् ।।

प्रथम पीठिका

व्यवहार सम्बन्धी

पितृ–भक्ति प्रेम में तीन रुकावटें

जीवन मुक्त सन्तान

प्रश्न १–माता–पिता का बच्चे के साथ जो मोह होता है–या प्रेम और त्याग, उतना बच्चे में माँ–बाप के लिए क्यों नहीं होता?

उत्तर–माता–पिता में बच्चों (सन्तान) के प्रति पैदाइश के समय मोह नहीं होता–अपितु प्रभु देव अपने प्रेम स्वरूप उनमें स्पर्श कर रहे होते हैं–इसलिए वे निःस्वार्थ भाव से अपना सर्वस्व त्याग देते हैं। बाद में बड़ा होने पर प्रेम नहीं रहता, अपितु मोह हो जाता है, प्रभु अपना स्पर्श हटा लेते हैं। जैसे मनुष्य किसी पुण्य कार्य को जब करता है तो उस समय उसका भाव सात्विक होता है। बाद में बढ़ने पर यश का इच्छुक राजसिक रूप धार लेता है। सन्तान का प्रेम माता–पिता में उतना इसलिए नहीं होता–कि उस में तीन चीजें रुकावट होती हैं। जब विवाह हो जाता है–पुत्रैषणा (काम) वितैषणा (धन का लोभ) और लोकैषणा (मान का मोह अहंकार) जिस–जिस की इन तीनों में से जिसमें अधिक प्रवृत्ति होती है वहीं रुकावट बन जाती है। यदि सन्तान भी इन तीनों रुकावटों को त्याग कर वैसा प्रेम माता–पिता से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे तो वह जीवन–मुक्त हो जावे।

२. सन्तान का प्रेम माता–पिता में नहीं होता, अपनी सन्तान में फिर क्यों हो जाता है? माता–पिता में प्रेम प्रभु के स्वरूप से था। जब बच्चा अहंकार को समझ गया–तब प्रेम की बजाय मोह हो गया। जब बड़ा होकर विवाहित हो गया–और अपनी संतान पैदा कर ली–तो माता–पिता बन जाने से–वह प्रेम अपने बच्चों में ऊब गया–अर्थात् अपने दादा, अपने पिता की सम्पत्ति अपने पुत्रों के लिए बन गई। स्वयं दादा का प्रेम भी पोते से हो जाता है। यह स्वाभाविक है। माता–पिता की सब सम्पत्ति अपने पुत्र के लिए होती है। जब तक पुत्र अपनी सन्तान पैदा नहीं करता–उस की सम्पत्ति–कमाई सब माता–पिता की ही होती है। जब सन्तान पैदा कर ली तब उसकी अपनी सम्पत्ति और दादा की सम्पत्ति भी पोते के लिए हो जाती है। इसलिए स्वभावतः सन्तान अपना सर्वस्व अपने माता–पिता को नहीं देती।

३. सन्तान अपने माता–पिता की पूर्ण भक्त तब बन सकती है, जब उनका जन्म मुक्ति के लिए हुआ हो। साधारणतया ऋण चुकाने या वसूल करने के लिए ही जन्म होता है। इसलिए जिस कारण से सम्बन्ध होता है वैसा ही कार्य बनता है–अधिक नहीं। इस लिए सन्तान पूर्ण–प्रेम नहीं कर सकती। २६–६–४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मनुष्य की सन्तान और माता–पिता में मतभेद' हर पशु में ऐसा नहीं, इसका कारण क्या?

पशु भी बच्चे पैदा करता है, और पालता है–और मनुष्य भी। पर कहीं नहीं देखा गया अथवा सुना गया कि कभी पशुओं के बच्चों से माता को कोई नाराजगी–या क्रोध हुआ हो। यद्यपि दस–दस बच्चे पशुओं के–कुतिया, सूरनी के साथ फिरते दिखाई देते हैं। परन्तु मनुष्य के घर में एक बच्चा ही माता–पिता के दुःख का कारण बन जाता है। माता–पिता कभी उसे मारते, गालियां देते, कभी कटु व्यवहार करते देखे जाते हैं। क्या कहा जावे मनुष्य क्या हुआ?

पशु तो पैदा होते ही पशु बन जाता है। उसको अच्छा कहलाने की इच्छा नहीं होती पर मनुष्य, अपने को अच्छा सुनना चाहता है। यही लालसा उसे खराब करती है, न वह देवता बनता है–न मनुष्य। फिर पशु से गया गुजरा हो जाता है, इसे क्या कहा जावे! कारण–माता–पिता पैदा करते हैं! पर प्रीति से पालते नहीं। मां अपने बच्चे को जब वह रोता है–उसे चुप कराने और कलह से बचने के लिए तुरन्त स्तन मुख में दे देती है। चाहे वह बीसों बार रोवे और जब कुछ बड़ा हुआ–और उसके काम में विघ्न डालने लगा–तो उसे पैसा देकर दूर भगाया। यह प्रीति नहीं–अपितु अपने स्वार्थ के लिए–यह शत्रुता है; अमित्रता है। इसी प्रीति में रीति की आवश्यकता है–अन्यथा परस्पर मतभेद न हो। पति–पत्नी एक दूसरे का आदर करें–किसी भी कीमत पर, किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण से–एक दूसरे का अपमान न करें तो सन्तान भी अनुकूल पैदा होगी। जैसे सन्तान कुल से पहचानी जाती है कि अमुक की सन्तान है, ऐसे दिल भी एक जाने जा सकें।

पहली सन्तान कन्या हो तो अहोभाग्य समझें

पुत्र उत्पन्न होने से प्रसन्न होते हैं। **वे माता–पिता धन्य हैं और बच्चा भी जिनकी पहली सन्तान कन्या होती है।** कन्या के उत्पन्न होने से माता में अहंकार नहीं आता, विनम्रता आ जाती है। यदि पहले–पहल बच्चा पुत्र हो–तो माता–पिता को बड़ी प्रसन्नता और माता को बड़ा अभिमान हो जाता है। पुत्र का नाम सुनते ही उसके सारे शरीर में अभिमान की प्रसन्नता रग–रग में समा जाती है–इसी शरीर से खून और दूध बनता है। उस बच्चे को दूध में अभिमान की घुट्टी पिलाई जाती है। जब पहली कन्या के बाद गर्भ हो तो तब भी बच्चा उत्पन्न होने तक माता में पूरा ज्ञान न होने से कि पुत्र ही उत्पन्न होगा, अभिमान नहीं आता है, विनम्रता रहती है। तो जब कन्या के बाद बच्चा पैदा होता है–तो प्रसन्नता और अभिमान तो आ जाता है पर अभिमान की घुट्टी नहीं पिलाई जाती। इसलिए कन्या जिसके पहले–पहल उत्पन्न हो उसे आध्यात्मिक रूप से प्रसन्न होना चाहिए।

३१–१२–४८

गोद ली गई सन्तान की विश्वासपात्रता की पहिचान

अपने पेट में से पैदा हुए और गोद में लिए सन्तान में भेद होता है। माता–पिता तो अपने पैदा हुए की अपेक्षा गोद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लिए को बहुत प्यार करते हैं–सिक (चाह) के कारण। परन्तु जब गोद का लिया बच्चा माता–पिता के पेट से पैदा हुए से भी अधिक प्यार करने वाला हो–तो समझना चाहिये–वह बड़ी आयु में बेवफा (विश्वास–पात्र न) होगा।

माता–पिता नारियल सम कठोर

जिन बच्चों में ढिठाई, आवारागर्दी, एक ही बात को दोहराते जाना और खाऊ होने की बुरी आदतें हों–समझना चाहिए कि वे प्रचण्ड क्रोधी और लोभी संस्कार लेकर जन्मे हैं।

बच्चों के संस्कार को माता–पिता को बहुत विचार करके देखना चाहिए कि कहीं उन बच्चों के ये अवगुण अपने संस्कारों से उपज रहे हैं, या माता–पिता के या और दुष्ट साथियों के, या घरेलू बच्चों को देखने से। फिर उनका यथोचित उपाय–दूरीकरण का करना चाहिए, अन्यथा मोह या प्रमाद से अवगुण बढ़ते ही जावेंगे। माता–पिता बिना कठोर बने सन्तान के अवगुण सुधार नहीं सकते। परन्तु कठोरता नारियल के समान होनी चाहिए–बाहर से कठोर, अन्दर से नरम। अन्यथा ऐसा न हो कि कहीं बच्चों में निराशा या भय–बुजदिली पैदा हो जाये।

संतान में अहंकार–वृत्ति का निरीक्षण करें

एक सद्गृहस्थी को अपनी छोटी सन्तान का सब से अधिक निरीक्षण इस बात का करना चाहिए कि उसमें अहंकार अभिमान न आने पावे। अभिमान हो जाने पर बच्चों में हठ और कठोरता (शिष्टाचारहीनता) पैदा हो जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माता–पिता के विचारों में वे सहयोग नहीं दे सकेंगे और सदा परस्पर मनमुटाव रहेगा, प्रेम नष्ट हो जाएगा। इसलिए जिन कारणें से बालक में अहंकार–वृत्ति पैदा होने की आशंका हो उन कारणों को सदा देखते रहना चाहिए।

आज्ञा के उल्लंघन का कारण और फल

जब पुत्र माता–पिता की, शिष्य गुरु की, प्रजा राजा की, भक्त भगवान् की आज्ञा का पालन करने में असमर्थ हो, बे–समझ हो–तो, तो और बात है, पर जान–बूझ कर इन्कार कर देता है तो ऐसा समझा जाता है कि वह सम्बन्ध मर गया। पुत्र के लिए पिता, शिष्य के लिए गुरु, प्रजा के लिए राजा, भक्त के लिए भगवान् मर गया। ऐसी दशा में वह शाप को प्राप्त होता है और आशीर्वाद को खो बैठता है। इसका कारण अहंकार या क्रोधी स्वभाव ही है।

जब अपने स्वार्थ या मोह के कारण इन्कार करता है, या पालन नहीं करता–तो क्षमा मांगने पर पश्चात्ताप करने पर फिर संवर जाता है। २३–२–४६

"कम समझ से काम लेने का ढंग"

जो मनुष्य सरल, सादा, सीधा, कम समझ या मूर्ख हो–जवान या बूढ़ा बड़ी आयु वाला होते हुए भी बच्चों का–सा भाव या बुद्धि रखता हो–उससे संकेत या बुझारत से काम मत लो। उस से काम बिगड़ जाने पर, या न हो सकने या न करने पर भी क्रोधित मत होवो। अपितु जिसे तुम ऐसा समझते हो–उसे स्पष्ट समझा–बुझा कर काम लो हो सके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अपनी सहायता भी निगरानी या काम करने के साथ करो। इससे काम भी हो जावेगा—और दोनों शान्तचित्त रहोगे, अन्यथा काम भी न होगा—अशान्ति भी दोनों में रहेगी। बुद्धिमान् हरेक को सब तरह से जांच कर उस की बुद्धि अनुसार काम लिया करते हैं। अल्पबुद्धि या सादगी किसी की बनाई हुई नहीं—पूर्व कर्म से फल रूप में मिलती है। इसलिए इतना ही दण्ड उसे पर्याप्त है—जो प्रभु ने उसे दे रखा है। तुम और दण्ड मत दो—अन्यथा तुम स्वयं दण्ड के भागी बन जाओगे। यदि अंधे को कोई नाराज हो कि 'तुम क्यों मार्ग पर नहीं चलते?' तो कहने वाला ही लोगों की दृष्टि में मूर्ख समझा जायेगा। यही दण्ड उसके लिए पर्याप्त है।

विचारधारा की एकता

दो आदमी एकचित्त कैसे हो सकते हैं जो विचारधारा एक में उत्पन्न हो, तत्काल दूसरे में भी बिना परिश्रम उत्पन्न हो जाए।

१. कमाण्डर एक है और सिपाही बहुत। ज्यों ही कमाण्डर के चित्त में विचार आया, और वाणी से प्रकट हुआ, तत्काल ही सारी फौज का ऐसा कदम उठा कि एकदम में सब को देखा या सावधान का शब्द कहा—तत्काल सब के सब वैसे दिखाई दिए। यह है स्थूल रूप।

२. मां रो रही है—बच्चा आया। देखते ही, आवाज सुनते ही—रोने लग पड़ा।

३. कोई मर गया—एकदम सारे धाड़ें मारने लग पड़े।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. एक आदमी प्रार्थना कर रहा है–और रो पड़ता है, सुनने वाला भी बे–इख्तियार रो पड़ता है–ये है सूक्ष्म रूप। पर

५. इन से भी अति सूक्ष्म है–जब कि दूर–दूर हों, जुदा हों, बेतार–तार की तरह एक का विचार दूसरे में प्रवेश कर रहा है। **सम्मिलित प्रार्थना**–विचारों का अभिप्राय यही था, मिलकर प्रीति से भक्ति का अर्थ भी यही था। एक नेता के चित्त में धारा आ रही है–वही सब में एक समान, एक समय, बह जाए।

नारी पूजा का रहस्य

शास्त्रों में कथन है, कि–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

जहां नारी जाति की पूजा होती है–वहां देवताओं का निवास होता है। इसका क्या अर्थ है?

जितने भी दिव्य गुण हैं–वे सब स्त्रीलिंग कहे जाते हैं। जिस स्त्री में वे गुण होंगे–वह घर देवताओं का–अर्थात् सुख शान्ति और प्रकाश सम्पत्ति वाला होगा। बरकत भरा होगा। वे गुण हैं तो बहुत–पर उनमें से पांच मुख्य हैं, जो अवश्य स्त्री में होने चाहिएं और जिस स्त्री में ये पांच गुण होंगे–वहां देवताओं का–सा वातावरण होगा, स्वर्ग होगा। वे गुण ये हैं–

१. पर पुरुषों के सहवास से लज्जा–अपने दोनों कुलों की लाज रखने वाली।

२. अपने बच्चों के साथ जैसे इसमें दया है वैसे दीन–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीन जन पर दया रखने वाली हो।

३. अपने पति की कीर्ति फैलाने वाली हो। वैसे इसकी अपने परिवार अड़ोस–पड़ोस में कीर्ति हो।

४. दुःख आपत्ति और निर्धनता आ जाने पर धृति को अपनी सच्ची सहेली बनाने वाली हो, घर के सब कामों में धृति हो।

५. अपने पति और पति के बुजुर्गों के सामने नम्रता से बर्ताव करने वाली हो। वैसे ही आये गये, छोटे–बड़े, अपरिचित, निर्धन जो घर में आये उस से स्वभाव से नम्रता से व्यवहार करे। वैसे तो पवित्रता, सरलता, उदारता, मधुरता, कोमलता, अनसूयता, क्षमा, विद्या, आदि सब गुण स्त्रीलिंग हैं, परन्तु निन्दा, निद्रा, निकम्मापन, चुगली, चोरी, चोसापन, ईर्ष्या, असहमिता, आवारापन, कामिनी, कंजूस, क्रूरस्वभाव वाली देवियां आसुरी गुण के कारण घर में देवताओं को नहीं आने देतीं।

सूक्ष्म प्राण का बन्धन, सम्बन्ध

पुत्र बड़ा होकर कालिज पढ़ रहा है, जो १०० मील दूर है–मां बाप से। या विलायत चला गया है–जो पांच हजार मील दूर समुद्र पार है, परन्तु मां बाप रोते नहीं। यदि वही बच्चा पास मर जाए या वहां रहता हुआ मर जाए तो बेहोश होकर गिर पड़ें, रोते–रोते हिचकियां बंध जाएं। क्या चीज है? जो पहली दशा में प्रसन्न और दूसरी दशा में चिन्ताग्रस्त कर देती है। पुत्र का शरीर मां–बाप के शरीर से बना और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सूक्ष्म शरीर के आश्रय से गर्भ में आया, पला, बढ़ा। इसमें सूक्ष्म प्राण जो हृदय में रहता है–इसकी डोरी, जैसे पतंग की डोरी आकाश पर उड़ाती है, पर उसका तार बच्चे के साथ में होने से एक बनी रहती है, पर जब तार टूट जाता है–तो पतंग गिर जाता है, ऐसे दोनों आत्मा के तार सूक्ष्म प्राण से बंधे रहते हैं। सूक्ष्म प्राण डोरी समान है, जिसकी तार अहंकार के हाथ में है। जब एक की तार समाप्त हो गई–तो चाहे पास से टूट जाए–चाहे दूर से, वह दुःखी करती है।

चित्त के मण्डल से बाहर अहंकार का मण्डल है। अहंकार के मण्डल के बाहर सूक्ष्म प्राण का है–जो जीवन शक्ति देता रहता है, इसलिए अहंकार को दिखाया गया है।

गुरुजनों की सच्ची मान–वृद्धि

७. किसी के मान करने या मान देने से मान नहीं बढ़ता। किसी का मान बढ़ाना हो–तो उसके काम को बढ़ाओ। जितना–जितना, और जहां–जहां काम बढ़ेगा–वहां–वहां ही उतना–उतना उसका मान होगा और उसका नाम प्यारा लगेगा। यदि कोई किसी का मिलने पर मान करता है तो वह मान–मर्यादा, शिष्टाचार का सत्कार मात्र है। यदि कोई न करे तो उसकी अपनी घटती है। जिस कारण से सत्कार नहीं किया–वह अहंकार से न किया होगा, या ईर्ष्या, स्वार्थ, घृणा से न किया होगा। अभिप्राय कि इन अवगुणों के अधीन होगा–तो अपने आप घटती होगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु और भाग्य

मौत से मरने वाला प्राणी भी व्याकुल होता और घबराता है और उसके सम्बन्धी भी रोते हैं—यह सामान्य अवस्था है।

१. कौन नहीं घबराता? जिसने अपने जीवन को नमस्करणीय बना लिया हो।

२. किसकी मृत्यु से खुशी मनाई जाती है? जिसकी आयु पूर्ण—अर्थात् सौ वर्ष के समीप पहुंच गई और जिसका परिवार बढ़ा हुआ है, उसके जीवनकाल में ही।

३. कौन मृतक प्राणी भाग्यवान है और किस प्रकार सन्तान इस मृतक की भाग्यवान् होती है? जिस मृतक का अन्त समय प्रभु में चित्त हो और सन्तान—परिवार उसकी आशीर्वाद उपदेश की इच्छुक हो, और उसकी अर्थी को सम्मान से दाह करने वाले हों और भाग्यवान् सन्तान वह हैं—जो मृतक के मरने पर यज्ञ—वेदवाणी द्वारा लोगों को जीवन दान देते हैं और सदा के लिए पुण्य स्मृति बनाते हैं और पितृ—ऋण से उऋर्ण होते हैं। २१—१—४६

काम मोह और प्रेम की भ्रान्ति व रहस्य

काम, मोह, प्रेम, तीनों का बाह्य स्वरूप एक—सा होने से मनुष्य धोखा खा जाते हैं, उन्हें भ्रान्ति हो जाती है। मोह और प्रेम का स्वरूप बाह्य और आन्तरिक एक जैसा होता है, और काम का बाह्य उनके जैसा और आन्तरिक गुप्त होता है। बाह्य स्वरूप छः प्रकार से होता है—दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, भाषण, आलिंगन, चुम्बन।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन छः दशाओं में दूसरा सही अनुमान नहीं कर सकता–प्रेमी और प्रियतम दो ही जान सकते हैं, अपने–अपने भावों से। और कभी तो प्रियतम भी नहीं जान सकता, प्रेमी ही को अपने भावों की सुधि होती है। इसलिए इनके भेद को जान सकना कठिन है। २२–१–४६

प्रेम एक जादू है

प्रेम तो चाहे स्वार्थ से भी हो, अपना जादू चला ही देता है। प्रेम एक जादू है, धन का स्वार्थ, प्रेम, तन, मन, मान निछावर कराता है। तन का प्रेम–मन, धन और मान को, मन का प्रेम तो सर्वस्व ही लुटा देता है।

पूज्य–पूजा से विरक्ति क्यों?

१. वह मनुष्य जो अपनी मान–प्रतिष्ठा में आसक्त है, उसे अपने बुजुर्गों, पूज्य देवों की अनुपस्थिति अच्छी लगती है। वह अपने सिर पर किसी का छत्र नहीं चाहता, न किसी अनुशासन में रहना पसंद करता है।

बुजुर्गों की अनुपस्थिति में वह अपने मन की शान्ति और उपस्थिति में अशान्ति मानता है। यही शान्ति उसकी उन्नति नहीं अपितु बाधा है उन्नति के मार्ग में। १८–६–४६

"आत्माओं की एकता अहंकार समर्पण से"

२. स्त्री–पुरुष को दम्पती कहा गया है। शास्त्रकार कहते हैं कि दोनों को दो शरीरों में एक आत्मा समझनी चाहिए। दो आत्मा एक कैसे हो सकती हैं? जब शरीर में भी दो ही हैं? अहंकार के भेद से आत्मायें भिन्न–भिन्न और कर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार भिन्न–भिन्न होते हैं। परन्तु दोनों का अहंकार एक दूसरे में मिल जावे, अर्पण हो जावे तब विचार भेद उत्पन्न नहीं हो सकता। इसको दो आत्माओं की एक आत्मा शास्त्रों ने कहा है।

३. जिसे अपना ही तन–सुख प्यारा है, वह परिवार के सुख का शत्रु है। जिसे अपना ही धन प्यारा है, वह समाज सेवा का शत्रु है। जिसे अपनी ही प्रतिष्ठा प्यारी है, वह अपने आत्मदर्शन का शत्रु है।

धार्मिक चित्रों का उद्देश्य

४. धार्मिक उत्साही जनमण्डपों में महापुरुषों के चित्र, मन्त्र और माटोज (आदर्श वाक्य) लटकाते हैं। बाह्य रूप तो मण्डप को शोभायमान करने के लिए होता है। जड़ वस्तु भी आकर्षित करने वाली बन जावे, पर आन्तरिक रूप के भाव से यदि ऐसा किया जावे तो उन लोगों के लिए बहुत लाभकारी हो सकता है, जो परमेश्वर को नहीं जानते, पर रुचि धर्म में रखते हैं, तो वे प्रभु के भक्तों, प्यारों के चित्र को देखकर, उनकी जीवनी को सन्मुख रख, प्रभु से प्यार करने लग जावेंगे। पाप की वृत्ति उठे तो उन प्यारे भक्तों महापुरुषों की स्मृति से लज्जा आने लग जावे, तब तो वे चित्र को सही रूप से लटकाते हैं। यदि इसे लटकाकर भी इन्हें पाप से घृणा लज्जा नहीं आती, तो वह कोरा धोखा और दिखावा है।

३१–१०'४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुजनों के चित्रों की वास्तविक पूजा और फल

दीवार पर माता–पिता या गुरु की फोटो लगाई है। दीवार का फोटो से और फोटो का दीवार से प्रेम प्यार नहीं है, दोनों जड़ हैं। परन्तु फोटो से पुत्र या शिष्य को प्रेम है। इस फोटो को आदर से उठाता, रखता है, इसकी ओर बड़ी श्रद्धा भक्ति से देखता है। पर यह वास्तविक पिता या गुरु नहीं है। वह प्रेम और श्रद्धा नहीं तो फोटो से उसे क्या लाभ होगा? जो हर समय पिता या गुरु को अपने में नहीं देखता, तो जैसे असल तैसे नकल, जब सामने आए तो प्रेम हो गया, जब सामने नहीं तो प्रेम नहीं। इस प्रेम का अर्थ गले लगाना या नमस्कार से प्रकट करना नहीं। प्रेम का वास्तविक अर्थ है, पिता या गुरु का जो गुण, या कर्म, या स्वभाव प्यारा लगता है–वह अपने में एक हो जावे। तो फोटो की आवश्यकता नहीं–वह प्रेम हर कहीं दृष्टिगोचर होगा और वही गुण, या कर्म, या स्वभाव रात हो या दिन, एकांत हो या कमरा, पाप में, पुण्य में, वह अपने पूरे आकार से सहायता करता दिखाई देगा। गुण कर्म स्वभाव आत्मा के सहारे रहते हैं। आत्मा के मध्य कोई पहाड़, दीवार, पृथ्वी, जल, अग्नि रुकावट नहीं बन सकती। आत्मा सूक्ष्म शरीर द्वारा (सूक्ष्म प्राण) फैल कर वहां तक पहुंच जाता है।

पवित्र कार्य–पवित्र फल

पवित्र

कार्य–आहार, व्यवहार, आचार, विचार

फल–सुख, यश, आत्मसाक्षात्, प्रभु–प्रसन्नता

मनुष्य यदि संसार में सुख और यश प्राप्त करना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे–तो आहार व्यवहार को पवित्र बनाए। यदि आत्म–साक्षात् करना चाहे, प्रभु को प्रसन्न करना चाहे तो आचार विचार को पवित्र बनाए, यही गुर है।

ईर्ष्या करने वाला मनुष्य अगले जन्म में यदि मनुष्य का जन्म पावे–तो रंग काला होगा।

ओ३म् ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

यजु. ४०–१

आत्मविस्तार का एक दृश्य

एक पिता है, उसके पास एक संतरा हाथ में था। एक बच्चे को बुलाया–रामलाल! दौड़ आओ, संतरा खाओ! संतरे का छिलका उतारा, एक डली उसे पकड़ा दी। अब सत्यपाल को बुलाया उसे भी एक डली दी, मदन गोपाल भागा आया उसे भी एक डली दी। एक लड़की दौड़ी हुई आई उसे भी एक डली दी। अब भतीजों को बुलाया उनको भी दी। नन्हीं बच्ची बहन की जाई आई–उसे भी दे दी, अब कुछ भी बाकी नहीं रहा। बहन ने कहा भय्या, नन्हीं बच्ची है, इसने तो खाना नहीं, खराब कर देगी। आप ने अपने लिए नहीं रखा, आप ही इसे खा लो। पिता–आ! हा! हा! यह क्या कहा है? मैंने किसे दिया है? बहन! आपने सब बच्चों को बांट दिया, स्वयं नहीं खाया। पिता–मैंने तो किसी को दिया नहीं सारा संतरा १२ डली था–मैंने ही तो खाया, भला बता–खाने और लेने की क्या निशानी है? बहन ने कहा सब बच्चे प्रसन्न हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। पिता ने कहा कैसे जाना? बहन–उनके मुखों से। पिता–तो फिर मेरा मुख कैसे दीखता है। बहन–बहुत प्रसन्न, उनसे भी अधिक प्रसन्न। पिता–तो फिर कैसे कहती हो कि मैंने नहीं खाया। मैंने बच्चों को नहीं दिया। प्यारी बहन! तू भूल रही है, कोई किसी को नहीं देता, जब कोई देता है–वह अपनी आत्मा को ही देता है।

बहन–भला दूसरे घर वालों के बच्चों को क्यों न बुला कर दिया? पिता–बस मैंने उनमें अपनी आत्मा नहीं समझी। जब मनुष्य सर्वभूतों में अपनी आत्मा जान लेता है, तो सब को बांट देने पर अत्यन्त प्रसन्न होता है।

खाना तो पशु का काम है और बांटना मनुष्य का काम है। अपने लिए न रख कर, बांट कर, प्रसन्न होना देवताओं का काम है। ३–२–४६

प्रारम्भिक नकल करने का रहस्य वा उद्देश्य

कल के आये एक पत्र के उत्तर में मैं देख कर कह रहा हूं–"प्यारे! तुम सच्चे हो, क्योंकि अभी तुम कच्चे हो। छोटे बच्चे नकल करने के शौकीन होते हैं–काने का घोड़ा बना उसको आगे से लगाम और पीछे से पूछल (दुम) पुराने कपड़े की लगा ऊपर चढ़ सवार होकर एक, और काने का चाबुक लगा कर दौड़ाते हैं, और असली घुड़सवार की तरह चाबुक लगाकर मुंह से आवाज भी करते हैं और आपस में मुकाबला करते दौड़ते हैं और बहुत खुश होते हैं। इतने पर समाप्ति नहीं, अपितु सचमुच उन घोड़ों (काने के घोड़ों) को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी के पास ले जाकर उनका सिर नवा कर कहते हैं, छी छी (पानी पी)। थोड़ी देर में ऐसा करके फिर दौड़ाते हैं और फिर एक किल्ले पर बांध देते हैं और कहते हैं कि अब घोड़ा थक गया है, इसे घास डालें। इस पर ही बस नहीं—अपितु इसे इतना सच्चा घोड़ा मान लेते हैं कि यदि कोई इस घोड़े की पूंछ काट ले या घोड़ा तोड़ दे (मार दे) या उसे चुरा, छिपा ले तो रोने लग पड़ते हैं। अपने माता—पिता के पास फरियाद करते हैं कि अमुक ने मेरे घोड़े को तोड़ दिया या चुरा लिया। वे सच्चे हैं, उन बेचारों का ध्येय, मन्जिले मकसूद पर पहुंचना तो है नहीं। असली घोड़े पर चढ़ने से डरते हैं—क्योंकि वह सरकश होता है, उस पर अनाड़ी तो चढ़ नहीं सकता, डरने और मर जाने, चोट लगने का भय रहता है। फिर सामर्थ्य—हीन भी हैं तो प्रकृति माता उन्हें शरीर से दृढ़ बनाने के लिए सेवा स्वभाव प्रदान कर देती है, कि वे दौड़—धूप के पुरुषार्थ से अपना शरीर बना सकें और प्रसन्नता आह्लाद से अपना खून और आयु बढ़ा सकें, जय की कामना और संगठन मेल की भावना भी जागृत रह सके। सो जब तुम्हें ज्ञान हो जाये कि यह अवस्था और यह कार्य एक तुम्हारा शुगल—सा है, वास्तव में तुम अपने ध्येय को इससे नहीं पहुंच सकते, तो तुम को असली घोड़े पर सवार होने का शौक भी हो जाएगा और उसी लगन की तरह पैदा हो जाएगा। फिर गिरने, चोट खाने और मरने के भय से भी ऊपर हो जाओगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नगरवास और ग्रामवास में भेद क्यों?

१. नगर और ग्राम दोनों में मनुष्य बसते हैं–परन्तु दोनों के जीवन में भेद रहता है। जिन बातों के लिए नगर वालों को स्वतन्त्रता होती है, उनमें ग्राम वालों को परतन्त्रता और जिन बातों में ग्राम वालों को स्वतन्त्रता होती है, उनमें नगर वालों को परतन्त्रता। यह सब अपने कर्म–फल का परिणाम होता है। नगर वालों को सुरक्षा के लिए पुलिस, न्यायालय सुगम, रोग की चिकित्सा के लिए औषधालय और डाक्टर–हकीम, रोजगार के लिए व्यापार और कारखाने, विद्या के लिए स्कूल–कालिज सुगम प्राप्त होते हैं। ये चारों ग्राम वालों को दुर्गम हैं, परन्तु शुद्ध अन्न, जल, वायु, दूध, घी, फल और प्रकाश ग्राम वालों को सुगम प्राप्त हैं, और नगर वालों को पराधीनता है।

नागरिक सभ्य और ग्रामीण असभ्य होते हैं। दोनों को अपना कर्म–फल जानने की चेष्टा करनी चाहिए।

भूमि–भूमि का भाग्य भिन्न

२. भूमि–भूमि के अपने–अपने भाग्य होते हैं। कोई उपकार रहित, कोई पशु की सेवा, कोई मनुष्यों की तन सेवा करती है, और भाग्यशाली भूमियां मनुष्यों की आत्माओं को उन्नत करने में काम आती हैं। विद्यालय, गुरुकुल, मन्दिर, यज्ञ–शालाओं आदि में प्रयुक्त होती हैं।

अच्छा बुरा कौन?

३. कई लोग अच्छे काम नहीं करते, तब भी उनको बुरा नहीं कहा जाता है और कई लोग बुरा काम नहीं करते तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उनको अच्छा नहीं कहा जाता–उदाहरणतया एक आदमी संध्या हवन नहीं करता–तो उसे कोई नहीं कहता कि यह बुरा आदमी है। एक आदमी शराब नहीं पीता, तो उसे अच्छा आदमी नहीं कहा जाता, अपितु जो मनुष्य अच्छा काम करता है, उसे अच्छा और जो बुरा करता है उसे बुरा पुकारा जाता है। १०–५–४६

गणित सिद्धान्त से गुण ग्रहणादि की शिक्षा

गणित में एक सिद्धान्त है–

१. विषम के साथ यदि सम मिल जाए, तो परिणाम विषम होगा। जैसे ६+२––विषम हुआ।

२. विषम के साथ विषम मिलाया जावे तो परिणाम सम होगा। जैसे ६+३––१२

३. सम के साथ सम मिलाया जावे तो भी परिणाम सम बनेगा, जैसे ४+२––६ सम होगा।

यही सिद्धान्त अध्यात्म में भी लगता है। नेकी और बुराई, पाप और पुण्य, ये विषम और सम में समझो। यदि कोई मनुष्य सौदा बेचते झूठ बोलता है–पर धर्म की शपथ भी खाता है विश्वास दिलाने के लिए, तो परिणाम पाप ही होगा। यदि पाप के प्रति क्रोध करता है, क्रोध भी शत्रु है, तो परिणाम पुण्य होगा। पुण्य करके नम्र हो जाता है–तो भी परिणाम पुण्य ही होगा। निन्दनीय की निन्दा करो–तो स्तुति या भलाई कहलाएगी। यदि स्तुति की निन्दा करो–तो निन्दा बुराई कहलाएगी। खण्डन का मण्डन करो, या मण्डन का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डन करो तो खण्डन समझा जावेगा। यदि खण्डन का खण्डन करो–तो मण्डन समझा जावेगा। ऐसे ही दो (नेगेटिव) मिलकर एक (पॉजिटिव), दो मनफी (– घटा) मिल कर एक मुसबत (+ जमा) बन जाती हैं। मुसबत में मनफी लगाने से वह भी नफी बन जाती है। जन्मा के साथ अ लगाने–जोड़ने से अजन्मा (नफी) बन गया। अकः (दुःख) नाकः (दो नफी मिलकर) सुख बन गये–मुसबत बन गए।

नौकर–स्वामी के आवश्यक गुण

नौकर में चार गुण हों :–

१. विनम्र, २. आज्ञाकारी, ३. ईमानदार, ४. स्वामी हितैषी।

इनमें से एक भी कम हो तो, स्वामी निश्चिन्त और गौरवयुक्त नहीं रह सकता।

स्वामी में भी चार गुण हों–

१. सभ्यता से बोलने वाला, २. पूरा निरीक्षक, ३. नेकनियत, ४. नौकर को अपने जैसा आदमी समझने वाला। इनमें से एक भी कम हो, तो नौकर कभी खुश नहीं रह सकता।

व्यवहार कार्य सफलता के पांच गुर

व्यावहारिक मनुष्य को अपने व्यवहार में पांच प्रकार की सावधानी करनी चाहिए। ऐसा करने वाला अपने कार्य में सफल होता है।

प्रथम–पुरुषार्थ, द्वितीय–नीचीदृष्टि, तृतीय–संकोच, चतुर्थ–फैलाव, पंचम–चलता–फिरता।

अर्थात्–१. पुरुषार्थ ऐसा हो कि स्वामी भी सेवकों की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भांति ठीक समय पर अपने काम पर विद्यमान हो। यदि बड़े कामों वाला हो–तो प्रबन्धक जो उसका स्थानापन्न है, ठीक समय पर उपस्थित हो। भोजन का समय भी उसका सेवकों के साथ–साथ हो। अपने को भी एक बड़ा कर्मचारी समझे, व्यवहार को ही स्वामी समझे।

२. नीची–दृष्टि से अभिप्राय (अ) सब के कार्य का निरीक्षण आंख फाड़ या सामने होकर न करे, बल्कि छुपकी दृष्टि से करे, किसी को पता न लगे कि हमारी देख–भाल होती है। वे डर के मारे काम पर ध्यान देने वाले न हों, अपितु दिल से प्यार करने वाले हों। इन्हें यह भान न हो कि अमुक समय स्वामी या प्रबन्धक हमारी देख–रेख करता है, अपितु इनको चौबीस घण्टे भान बना रहे कि स्वामी देख रहा है। (आ) नीची दृष्टि से अभिप्राय–अहंकार न करे, नम्र रहे। (इ) नीच से नीच, छोटी से छोटी चीज में भी उसकी दृष्टि रहे। अभिप्राय यह है कि उसे अपने प्रत्येक छोटे से बड़े तक, सेवक और काम का ज्ञान हो, उसकी आंख देखने वाली हो।

३. संकोच, बुरे कामों, बुरे विचारों और लोभ से, बुरे संग से और सेवकों से संकोच करे।

४. फैलाव से अभिप्राय–उदार और दानशील हो।

५. काम सदा चलता–फिरता रखे। किसी भी खरीदी वस्तु को बन्द करके न रखे। आगे के लालच में एक स्थान पर ही इक्तफा (कर्त्तव्य की सम्पूर्णता) न करे। स्थान–स्थान पर फैले, और अपनी वस्तु को दूर–दूर ले जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् अहुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।
विष्णुस्त्वा क्रमतां उरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च।।

यजु. अध्याय १ मं. ६।।

भावार्थ—जब मनुष्य परस्पर प्रीति के साथ कुटिलता को छोड़ कर शिक्षा देने वाले के शिष्य होके विशेष ज्ञान और क्रिया से भौतिक अग्नि की विद्या को जानकर उसका अनुष्ठान करते हैं, तभी शिल्प विद्या की सिद्धि के द्वारा सब शत्रु, दारिद्र्य और दुःखों से छूट कर सब सुखों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार विष्णु अर्थात् व्यापक परमेश्वर ने सब मनुष्यों के लिए आज्ञा दी है, जिसका पालन करना सबको उचित है।

धनी और निर्धन की मित्रता चिरस्थायी नहीं

१. धनी—निर्धन की मित्रता सच्ची, सिवाय भक्ति भाव वालों के नहीं बन सकती, और जितना भी प्रेम धनी और निर्धन का दोस्ताना दिखाई देता है उसमें लेन—देन ही उस सम्बन्ध को गांठे रखता है। निर्धन के अन्दर अपनी निर्धनता संकोच ग्रहण कराती है और धनी के अन्दर अपनी धनाढ्यता का मान यश—भाव, त्याग कराता है। यदि किसी निर्धन के पास वस्तु हो और फिर वह वस्तु दुर्लभ प्राप्त हुई हो, या मंहगी हो और यदि धनी उससे मांग बैठे—तो निर्धन देने में संकोच करेगा, दिल से देना न चाहेगा। हां, लज्जा से दे देवे, तो दे देगा, क्योंकि फिर उसे खरीद करने की हिम्मत नहीं दीखती। यदि दोनों में मित्रता—प्रेम सच्चा हो, तो न धनी को यश के भाव, त्याग का विचार होगा, न निर्धन को देने में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धनता का विचार आएगा। वह तो फिर जैसे अपने परिवार, बाल बच्चों को खिला देता है (खुशी से) ऐसे मित्र से भी करेगा। इसी से प्रायः यह मित्रता पूरी नहीं निभती। २७–२–४६

प्रचारकों उपकारकों में असहयोग क्यों?

तीन अवस्थाओं में ये प्रचारक या उपकारक मनुष्य अपने साथी से मिल कर काम नहीं करना चाहते, न अपने से बड़े से और न अपने बराबर वाले से।

१. जब वह अपनी मान प्रतिष्ठा का मोह रखता हो।

२. या जब वह अपना स्वार्थ, लालच द्रव्य का रखता हो।

३. या जब इसमें कोई विशेष कमी इस कार्य को चलाने में हो जिसे वह छिपाए रखना चाहता हो।

२. जो दो व्यक्ति या इससे अधिक अपनी–अपनी प्रतिष्ठा चाहने वाले यदि मिलकर भी काम करते दिखाई देते होंगे, तो यह मेल इनका बाहरी होगा, आन्तरिक कदापि न होगा। किसी भी स्वार्थ के कारण होगा, परमार्थ–भाव से नहीं।

खण्डन का अधिकार

मूर्ति का खण्डन वह करे, जिसके अपने ध्यान समय में, मन में किसी भी मूर्ति का आकार नहीं आता–पुत्र का, स्त्री का, धन, महल–माड़ी–मकान का, व्यवहारादि का। सिवाय प्रभु निर्विकार के और किसी का आकार नहीं आता। मृतक श्राद्ध का खण्डन वह करे, जिसने जीते पितरों को सेवा करके ऐसा तृप्त कर दिया हो कि उनकी रोम–रोम से आशीर्वाद निकलती हो, जिसने जीते पितरों की सेवा की ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं उसका अधिकार नहीं। अवतार का खण्डन वह करे, जिसने स्वयं अपने को विष्णु रूप "यज्ञो वै विष्णुः" बना दिया हो। जो ज्ञान में ब्राह्मण–शंख के समान हो (शंख का काम है सोतों को जगा देना)। प्रभु सेवा उपासना में उद्यत करना, और भुजा में बल (गदा) समान हो–जो अन्याय से बचाने के लिए बल लगाए और प्राण तक दे दे। नाभि में कोष (पद्म समान हो) जो नाभि अपनी आय को सारे पिण्ड को बांट देती है–ऐसा जो अपने कोष को राष्ट्र के लिए ग्रहण करता है। और चक्र समान पांव हों। रेलगाड़ी, मोटर गाड़ी, बैल गाड़ी, कला कौशल आदि चक्र चलाने से संसार की सेवा करने के योग्य हो, अन्यथा इन तीनों का खण्डन करने वाला अनाधिकारी और शारीरिक प्रचारक होगा–निष्प्रभाव। २६–२–४६

महर्षि दयानन्द के उद्देश्य

जब से आर्यसमाज बनी, महर्षि दयानन्द जी महाराज के उद्देश्य का प्रचार होने लगा। स्कूल, कालिज, विद्यालय, गुरुकुलों द्वारा और उपदेशक प्रचारकों द्वारा भी प्रचार हुआ। खण्डन और शास्त्रार्थ भी हुए। लेख अखबार में निकले। परन्तु जितना समय और जितना खर्च और जितनी मेहनत की गई, अनेक कामों में तो सफलता हुई, परन्तु बहुत–से आवश्यक से आवश्यक कामों में सन्तोषजनक काम नहीं हुआ। कई कामों में अभी तक रुचि तक भी उत्पन्न नहीं हुई। बड़े–बड़े काम जारी करके देख लिए, उनसे सफलता नहीं हुई। अब सामान्य साधारण मामूली कामों से जो वस्तुतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुनियादी हैं उनका घर–घर प्रचार करके देख लेवें, तो मेरा अनुभव है कि महर्षि दयानन्द जी महाराज का उद्देश्य–**"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इसका पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है"**–पूर्ण होने लग जाएगा। घर–घर में वेद विद्यमान पाओगे। वह विधि है केवल पंच महायज्ञ नित्यकर्म का प्रचार–क्रियात्मक रूप से आर्य घरानों को आर्य बनाना, आर्यत्व पैदा करना। लोगों के घरों में ही गुरुकुलों का परिणाम देख लें। सन्तानों को घर में ही प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा मिल जाएगी। जो गुरुकुल और विद्यालय नहीं कर सके, वह इस नित्य कर्म के घर–घर में अपनाने से हो जावेगा। कर्मकाण्डी स्वयं क्रियात्मक भक्ति भाव वाले वानप्रस्थी और गृहस्थी, संन्यासी बनके प्रचार करें, इससे सुधार होगा और महर्षि दयानन्द जी महाराज का मिशन पूरा हो सकेगा और कोई तरीका नहीं है। पिछले तरीके भी चलते रहें। गृहस्थियों का सुधार हो जाए, तो वे गुरुकुलों, विद्यालयों को भी ठीक कर देंगे। विद्यालय, गुरुकुल सुधार न कर सके, अब गृहस्थ स्वयं बनकर, उनका सुधार करेंगे। यह काम बिना खर्च के हो सकता है। केवल लग्न वाले मिशनरी चाहिएं। अपने गले में कोई खर्चीली बला न मढ़ी जावे, जिसके लिए कमेटियों और चन्दे की पराधीनता सहनी पड़े। १८–३–५३

प्रचारक सुधारकों के दो आवश्यक गुण

आकर्षण और रक्षा के दो गुण प्रचारकों, सुधारकों में आवश्यक हैं त्याग और प्रेम। त्याग का सिंहासन हो, और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का किला (दुर्ग) हो, त्याग से आकर्षित होता है, और प्रेम इसकी सुरक्षा करता है।

२. शब्द की चोट हृदय पर लगती है। तलवार बन्दूक और सोटे की चोट शरीर पर लगती है। हाथ की चोट शरीर को लगती है और वाणी की हृदय को। यही होशियारी सुधारकों में होनी आवश्यक है। २२–३–५३

विद्या शिक्षा

ज्ञान की परीक्षा दो प्रकार से होती है–एक मस्तिष्क (बुद्धि) की, दूसरी दिल (मन) की। विद्या बुद्धि की परीक्षा तो आवश्यक है–जो विद्यार्थियों की ली जाती है। जो कुछ ज्ञान विद्या उन्होंने प्राप्त की है, शब्दार्थ में उसको वैसे का वैसा जवाब दें तो वे पास (उत्तीर्ण) समझे जाते हैं। यदि विपरीत लिखें तो फेल (अनुत्तीर्ण), परन्तु शिक्षा (दिल) की परीक्षा तो कर्म अर्थात् व्यवहार से की जाती है। पढ़ा था कि चोरी नहीं करनी चाहिए। या प्रश्न तो होगा, कि क्या–क्या पाप हैं? उत्तर लिखा था, हिंसा, असत्य, चोरी, विषय विकार आदि, पर जब समय आया व्यवहार का–रेल की यात्रा करता है और थर्ड (तीसरे दर्जे) में स्थान नहीं–सैकिण्ड या इन्टर (द्वितीय या मध्य दर्जे) में चढ़ जाता है, और टिकट खरीदने के स्थान पर वह ढीठपना करता है या गार्ड या टी.टी. को एक आध रुपया देकर अपना पल्ला छुड़ा कर निडर होकर बैठता है, तो उसी रूप में वह अपनी ज्ञान–शिक्षा में कर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा फेल हो जाता है। पुस्तक के रूप में फेल होने से तो विद्यार्थी का साल मारा जाता है, और फिर परिश्रम करके दूसरे वर्ष प्रथम भी निकल सकता है, परन्तु कर्म में फेल हुआ मनुष्य चाहे आगे से बढ़ भी जावे, उसका जन्म मारा जाता है। अगले जन्म में इस चोरी की सजा भी अवश्य पाता है। इसलिए विद्यार्थियों को दोनों प्रकार की विद्या–शिक्षा देनी चाहिए और परीक्षा भी दोनों प्रकार की करनी चाहिए। १०–८–४६

विद्यालयों का सुधार

१. शरीर दृढ़ और सचेत रखने का मूल आधार जैसे मेरुदण्ड है ठीक इसी तरह जाति को स्वस्थ और संसार में प्रतिष्ठित बनाने का मूल कारण नव–युवक हैं। जाति के उत्थान का साधक नवयुवक, नवयुवतियां हैं और नव–युवकों के पास क्या हथियार हों? चरित्र, नियन्त्रण, वीरता, सरलता और कार्य कुशलता। आजकल की अवस्था उलट है। इसका कारण (एक बड़ा अंग है) चरित्र–हीनता का।

२. भूषण–घर का भूषण सन्तान। सभा का भूषण पण्डित, विद्वान्, श्रेष्ठबुद्धि का भूषण इन्सान। लज्जा स्त्रियों का भूषण महान् और भक्त का भूषण भगवान्।

३. स्कूलों विद्यालयों में मस्तिष्क सम्बन्धी भाषा ज्ञान और विषयों के ज्ञान होने के अतिरिक्त हृदय सम्बन्धी ज्ञान–नमस्कार, सेवा और आज्ञा पालन का बड़ा ध्यान अवश्य हो।

४. आज स्कूल, कालिज और यूनिवर्सिटियों की संख्या और विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई और बढ़ती चली जा रही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
है—यह तो एक सन्तोष का विषय है, पर साथ ही यह चिन्ता का कारण भी है। हमारी शिक्षा का ढंग ऐसा होता कि जो इस ढंग पर शिक्षा पाते कि वे कुछ विषयों के ज्ञान के साथ—साथ चरित्र में भी उन्नत होते और ऐसी योग्यता से भी सम्पन्न होते कि जीवन निर्वाह के लिए अपने हाथों और पैरों तथा अपनी देह और मस्तिष्क का भरोसा करके जीवन निर्वाह का साधन भी प्राप्त करते, तो इससे बढ़कर देश और राज्य के लिए दूसरी कोई अच्छी बात नहीं होती। पर आजकल नौकरी का लक्ष्य रख देश और समाज दुःखी हो रहे हैं।

५. आजकल के शिक्षा क्रम में चरित्र गठन के लिए कोई स्थान नहीं है, न उसको कोई महत्व दिया जाता है और न आज गुरु—शिष्य का भाव, सम्बन्ध है—जो पूर्व काल में हमारी संस्कृति में था।

६. छात्रगण पर शिक्षक—वर्ग के नैतिक प्रभाव का न होना भी एक दोष है।

७. हमारे शास्त्र कहते हैं **"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"**। कुछ काल पहले यद्यपि शिक्षालयों में विद्यार्थियों के चरित्र गठन पर ध्यान नहीं दिया जाता था—तो भी एक और दूसरी शक्ति, संस्था थी, जो इस त्रुटि को कुछ हद तक दूर करती थी। हमारा कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन कुछ ऐसा था कि उसका प्रभाव बचपन से ही हम पर पड़ता था। घर—घर में धार्मिक कृत्य किसी न किसी रूप में बराबर हुआ करते थे। रामायण महाभारत की कथा, त्योहार और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक उत्सव देखने को मिला करते थे। अब उनका भी उलट–फेर हो गया है।

८. मस्तिष्क की उन्नति के साथ हृदय की महानता आवश्यक है। आदेश संकेत–

आदरणीय महानुभावो! और प्रिय विद्यार्थियो! यह कुछ शब्द मैं आपकी पवित्र सेवा में रखना चाहता हूँ, आप ध्यान से सुनेंगे–तो आप को लाभ होगा। सब विद्यार्थी तो सुनकर ऐसी बातों को दिल में नहीं बसाते। हां कोई संस्कारी जीव होता है–तो कोई न कोई शब्द उसके दिल में बैठ जावेगा। क्योंकि स्कूलों में जो शिक्षा दी जाती है–वह परीक्षा पास करने के लिए मस्तिष्क में बिठाई जाती है, याद रखने के लिए, उसे नीचे दिल में नहीं उतारा जाता। परीक्षा पास करने के लिए ही लड़के पढ़ते और अध्यापक पढ़ाते हैं, जीवन पास करने के लिए नहीं। प्राइमरी और मिडल के विद्यार्थी तो एक जैसा पढ़ते हैं। उन्हें कोई अपना उद्देश्य भी मालूम नहीं होता। हां–थोड़ा–सा मैट्रिक में और फिर कालिज में लड़के अपना–अपना उद्देश्य रखकर मजमून (विषय) चुनते हैं। कोई मैडिकल साईंस लेता है–डाक्टर बनने के लिए, कोई दूसरी साईंस लेता है–इंजीनियर बनने के लिए, कोई अर्थ–शास्त्र (इकोनॉमिक्स) लेता है अर्थोपार्जन के लिए। ऐसे कुछेक विद्यार्थी उद्देश्य से पढ़ते हैं पर ये सब उद्देश्य पेट–पूर्ति के लिए होते हैं। ऐसी विद्याएं (सब) शरीर के नाश होने पर नष्ट हो जाती हैं, चाहे इससे करोड़ों अरबों रुपया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कमा लिया जावे और संसार में कितने ही खिताब (पदवियां–उपाधियां) प्राप्त कर लिए जावें, और कितनी जायदाद और सम्पत्ति, मकान, मोटरें खरीद कर ली जावें। आपके स्कूल की विशेषता है या जो लोग सरकार के अतिरिक्त अपने स्कूल खोलते हैं–उनमें वे विशेषता (धर्म की आड़) रख कर खोलते हैं, पर उनका जोर धर्म शिक्षा पर नहीं होता। कारण? उसकी परीक्षा यूनिवर्सिटी नहीं लेती। इसलिए नाम की आड़ में स्कूल बनाए और चलाए जाते हैं। धर्म के स्वरूप का ज्ञान नहीं कराया जाता। छोटे–छोटे बच्चों के मस्तिष्क पर जोर न पड़े और आसानी से पढ़ाया–सिखाया हुआ याद हो जावे तो चित्रों के द्वारा क–कुत्ता, घ–घोड़ा, ग–गधा आदि आकार बनाकर–ऐसे बच्चों को मनोरंजन दिखा कर याद कराये, पढ़ाये जाते हैं। इससे विद्या का स्वरूप या लक्ष्य और जीवन का लक्ष्य सही नहीं होता। पशु–पक्षी तो दो मास, चार मास, छः मास, १२ मास में अपना पूरा जीवन अपनी माता के गर्भ में सीख लेता है और घन्टे के बाद उठकर कूदता, फुदकता माता का दूध पीने लग जाता है, और जन्म से मरण पर्यन्त इससे विशेष उसे कुछ सीखना नहीं पड़ता। परन्तु मनुष्य का बच्चा निस्सहाय पैदा होता है। उसे उठाना, बिठाना, दूध का स्तन मुख में देना पड़ता है। जब स्तन उसके मुंह से निकल पड़ता है तो मां बार–बार पकड़ कर उसके मुंह में देती है–ऐसा निस्सहाय पैदा हुआ जीव–जो हाथी, शेर और फनियर सांप को पकड़ ले और कैद में डाल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे, सारे संसार का शासक बने, सूर्य, बिजली, हवा को अपने अधीन कर ले, नदियां काट कर नहरें निकाल ले, नदियां सुखा दे, भूमि गर्भ से सोना, चाँदी, अभ्रक, तांबे की खानें निकाल कर अरबपति बन जावे। किसके जोर पर? विद्या बुद्धि के जोर पर। प्यारे विद्यार्थियो! धनवान् तो एक अनपढ़ भी बन सकता है—अपने कर्मों के बल पर! पर ये काम जो ऊपर कहे गए—बिना विद्या के नहीं कर सकता। यह तो सबसे पहले जरूरी है। जानना विद्या का उद्देश्य है। महर्षि दयानन्द ने सबसे पहला नियम आर्यसमाज का बनाया—**"सब सत्य विद्याओं, और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं—उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।"** बस समझो कि जो विद्या और विद्या से जाना हुआ पदार्थ तुम को परमेश्वर—विश्वास और ज्ञान नहीं करवाता, वह विद्या नहीं है, अविद्या ही है। क—कुत्ता कहने से कुत्ते का ज्ञान होगा, न कि परमेश्वर का। परमेश्वर का रूप तो नहीं पर जो उसके स्वरूप को जानने वाले थे—ऋषि, मुनि, सुधारक और नेता, उनके नाम और शक्लें (आकृतियां) दी जातीं, तो हमारे बच्चों का विश्वास अपने पूर्वजों में कितना बढ़ता! कितनी श्रद्धा, उनके हालात जानने पर हो जाती! जैसे आज बच्चों को जवाहर लाल, गांधी, राजेन्द्र प्रसाद, पटेल आदि नेताओं के नाम और संक्षिप्त जीवन वृत्तांत प्राइमरी में ही पढ़ाए जा रहे हैं।

दूसरा लक्ष्य है—मनुष्य, का जीवन, जन्म। उसका उद्देश्य है अपने को जानना, जो पशु और पक्षी नहीं जान सकते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ग्यारह दिन के बच्चे को नामकरण संस्कार में यही रिकार्ड भरा जाता है—तू कौन है, कहां से आया, किसका है, तेरा क्या नाम है? मनुष्य जब विद्या पढ़ कर मनुष्य बन जाता है—तो उसकी क्या निशानी है कि वह अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट नहीं रहता। दूसरों की उन्नति में भी अपनी उन्नति मानता है, वह सामाजिक प्राणी बन जाता है। इसलिए ऋषि ने लिखा कि—**"अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए अपितु दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए"**। ऐसा मनुष्य किसी मर्यादा (डिसिप्लिन) के अधीन अपना जीवन बिताता है। वह मर्यादा क्या है? ऋषि ने लिखा, **सामाजिक सर्वहितकारी नियमों में परतन्त्र और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहना चाहिए।** तब उससे क्या होता है? मनुष्य सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहता है, यही ऋषियों की जीवन पद्धति है। ऋषि ने लिखा है कि—**"सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग में सदा उद्यत रहना चाहिए।"** यह सत्यासत्य का ज्ञान कहां से होगा? ऋषि ने लिखा—**"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, इसका पढ़ना—पढ़ाना, सुनना—सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"** आज चरित्र को हीन करने वाले कार्य दिखाए सुनाए, पढ़ाए जाते हैं। लड़के सबसे पहले सिर टेढ़ा करते हैं—अपनी सुन्दरता दिखाने के लिए (टेढ़े सिर तो पशुओं के हैं, जिन को नाक रगड़ सिर झुका कर अपना घास, दाना पेट की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुधा निवृत्ति के लिए खाना पड़ता है।), पाउडर, तेल, क्रीम लगा कर बाल संवार कर।

प्यारे! प्रभु ने मनुष्य को आदरणीय बनाया। उसका सिर थाली में रखी रोटी के सामने नहीं झुकता। कर (हाथ) नौकर बन कर आदर से उठाकर मुंह में देता है। जो मनुष्य आजीविका के लिए सिर झुकाता फिरता है वह पशु के समान है। कर्म ऊंचे बनाओ—सिर नीचे न झुकाना पड़ेगा। सदाचार की सुन्दरता दिखाओ। नाशवान शरीर की सुन्दरता मत दिखाओ। देखो माष की या मुंगी की दाल में ऐसे दाने होते हैं जो कुरड़ कहलाते हैं, मानो आग—पानी देने पर भी नहीं गलते। एक विद्यार्थी या जीव तो ऐसे हैं, जन्म जन्मान्तर के कुकर्मी, मन्द बुद्धि। दुर्योधन को भगवान् कृष्ण जैसे न समझा सके, और रावण जैसे विद्वान् भी न समझे। और दूसरी दाल तो एक फूंक से गल जाने वाली होती है, पर पानी खारा हो तो तब नहीं गलती। ऐसे अध्यापक गुरु जब क्रियात्मक न हों तब सब के सब वैसे—अशिक्षित से रहते हैं। इसलिए सबसे पहले अध्यापकों का जीवन ऐसा होना चाहिए, जिनके देखने से ही विद्यार्थी बन जावें। आंख और कान नकल करने वाले हैं।

शत्रु की बेखबरी भली

जालमे रा खुफता दीदम नीम रोज़।
गुफ़तम ईं फितना अस्त खाबश बुरदा बेह।।

—शेख सादी

अर्थ—शेख सादी ने एक अत्याचारी को दिन को सोते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हुए देखकर कहा कि यह शठ है, इसका सोया रहना अच्छा है। जो मनुष्य या जाति अपने शत्रु, भौतिक हो या आध्यात्मिक, की शक्तियों की प्रशंसा करता है और उसकी निर्बलताओं को प्रकट करके उसे चिढ़ाता है या धमकाता है, वह अपने नाश का कारण आप ही बनता है। प्रत्येक मनुष्य को इस सिद्धान्त के अनुसार सावधान रहना चाहिए। शत्रु को सदा बेखबरी में ही सुलाए रखने में शान्ति रहती है। १–१०–४७

खुशामद के तीन कारण

१. भय, २. लोभ, ३. मोह।

भिन्न–भिन्न प्रभाव–१. भय से खुशामद करने वाले मनुष्य चाहे वे भले ही हों, अपने विरोधियों के संसर्ग में रहने से, उनकी दूषित भाषा–शैली से ऐसे प्रभावित होते हैं कि वे अपनी वाणी से भाषण करते समय अपशब्द अवश्य बोल जावेंगे।

२. लोभ से खुशामद करने वाला मनुष्य अपनी वाणी में छल लावेगा।

३. मोह से खुशामद करने वाला मनुष्य अपनी वाणी से दम्भ करेगा। ४–१०–४७

किसी का अपमान मत कर

जब तुम ने किसी का एक बार अपमान कर लिया तो चाहे वह तुम से निर्बल व छोटा है, बड़ा या बलवान् है और वह चुप हो गया, मुकाबला नहीं किया, या हार गया, तो तुम किसी काल में भी निश्चिन्त (असावधान) न रहो। अपमान एक ऐसी बुराई है जो कि अपमानित मनुष्य के हृदय को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदीर्ण कर देती है, छेद देती है। उसको घृणा और द्वेष हो जाता है। यह अग्नि बिना विचारे भी गुप्त रूप से सुलगती, जलती रहती है, और किसी न किसी दिन इसी जन्म में वह निर्दय क्रोध का रूप धारण कर आक्रमण कर देती है। यदि इस जन्म में अपमानित मनुष्य की अग्नि किसी कारण वेग में न आ सकी तो अगले जन्मों में और भी अधिक प्रबल प्रचण्ड हो कर बदला लेगी। **इसलिए किसी का भी अपमान करना अच्छा नहीं।** ५–१०–५६

किसी का अपमान करके उसे परास्त करना वीरता नहीं। वीरता है–उसे अपने मैत्री बल से परास्त किया जावे। तब आक्रमण की चिन्ता नहीं रहती और घृणा भी दूर हो सकती है।

कमाई शुद्ध वा अशुद्ध

जो सत्य से तो कमाता है पर न्याय से भाग नहीं देता–उसकी कमाई अशुद्ध हो जाती है। जो शुद्ध कमाई का अन्न तो पकाती है–पर उसमें से पहले अधिकारियों को भाग नहीं देती वह जो कुछ अन्न है वह अशुद्ध हो जाता है। २५–१–५०

स्वराज्य का साधन

अब अपना स्वराज्य कायम रखना और बढ़ाना है–तो बच्चे–बच्चे में भौतिक :–

(क) अपने आप को दीन समझो–पर दीन न बनो।

(ख) किसी काम को दीन बन कर न करो, अपने को स्वामी समझ कर करो यही गुर है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. स्वराज्य यज्ञ है—यज्ञ ही स्वराज्य का साधन है। त्याग इसके पांव हैं। देव पूजा इसका सिर है, संगतिकरण (संगठन) इसकी नाभि है। स्वार्थ के कारण हमारा राज्य छिन गया था और त्यागवृत्ति से यह अब मिला है। अब इसे स्थिर करने के लिए संगतिकरण और देव पूजा की अत्यन्त आवश्यकता है। २४—२—५०

सेवा और सुधार

सेवा तो तन से सब कोई कर सकता है—क्योंकि सेवा कर्म है शरीर का काम है—परन्तु सुधार ज्ञान से होता है। सुधार वही कर सकता है—जो अपने इस ज्ञान के अनुसार स्वयं सुधरा हुआ हो, आचार—व्यवहार में इस के विचार परिणत हो चुके हों।

व्यावहारिक बुद्धि और पारमार्थिक बुद्धि तथा उनके चिह्न

व्यावहारिक बुद्धि—इसमें मनुष्य सब कार्यों में, चाहे वे आसुरी कर्म हों या दैवी, पहले अपने लाभ को सोचता है। इस कार्य के करने में मुझे क्या और कितना लाभ होगा और क्या हानि? इसका चिह्न यह है कि जब इसके कार्य में हानि होती है या कोई हानि करता है, रुकावट डालता है तो उसे दुःख और द्वेष पैदा हो जाता है। तब हृदय में कठोरता, बुरा चिन्तन होता और मुख से अपशब्द बोलता है।

पारमार्थिक बुद्धि—इसमें मनुष्य अपने या दूसरे के आत्मकल्याण को लक्ष्य में रखता है, उसे हानि या लाभ का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान सूझता ही नहीं, चाहे जो कुछ हो जाय। इसका चिह्न है, शान्त चित्त रहना, चाहे हानि हो या लाभ। कोई रुकावट डाले विघ्न, वह इससे बे–परवाह रहता है। इसकी भावना सदा दैवी रहती है।

व्यावहारिक–बुद्धि के साथ पाशविक–बुद्धि शामिल रहती है और पारमार्थिक बुद्धि में परोपकार–बुद्धि दैवी बुद्धि शामिल रहती है।

कमाई प्रारब्ध पर, रक्षा चतुराई पर

जिस मनुष्य की बुद्धि तो व्यावहारिक है नहीं, और रुचि पारमार्थिक है, परन्तु वह करता व्यापार है तो वह जो कमाया, उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा। क्योंकि कमाई तो चतुराई पर नहीं, प्रारब्ध पर है, पत साख पर है, परन्तु रक्षा बिना चतुराई नहीं हो सकती। व्यावहारिक बुद्धि वाले जितने चतुर होते हैं उतने और बुद्धि वाले नहीं और जिन परमार्थ बुद्धि वालों में सहन–शक्ति नहीं होती वे दोनों तरफ से घाटे में रहते हैं, न दीन सुधरता है न दुनियां!

सामाजिक काम करने वालों में भी व्यावहारिक–बुद्धि घुसी रहती है। उनके काम में जब कोई विघ्न डालता है तब वे अधर्म अन्याय का रूप देकर धर्म की आड़ में क्रोध द्वेष करते हैं।

आत्म–सम्मान

जब मनुष्य अपने किसी छोटे या बड़े स्वार्थ के लिए परायों के सामने अपने को दीन बना कर पेश करता है, दीनता करता है, हाथ जोड़ता–यहां तक कि पाँवों पर पगड़ी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उतार रखता है, तो समझो वह खुद्दार (आत्म सम्मान वाला) नहीं, खुदफरोश (आत्म सम्मान विक्रेता) है। यदि बड़ा होकर अपने बराबर या छोटी हैसियत वालों के सामने गिड़गिड़ाता है—अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए, तो समझो वह पहले से दम्भी है और छोटी हैसियत में है। और गिड़गिड़ाता है तो वह अपनी आत्मा को आत्म—सम्मान या खुद्दारी को अभी तक समझा ही नहीं। खुद्दारी से न आश्ना है।

२. दोष करके अपनी बे—इज्जती के डर से छुपाता है, झूठ बोल देता है तो समझो आत्म—सम्मान खो रहा है।

३. दोष करके सजा के समय माफी मांगता है, सजा के भय से या अपने शरीर, परिवार, बाल—बच्चों के मोह की खातिर, तो वह आत्म सम्मान खोता है। हां, अगर दोष करके अपने दोष को मान लेता है और लज्जित होता है और कहता है कि मुझ से वास्तव में गलती हुई, मैं फिर ऐसा दोष न करूंगा, चाहे मुझे छोड़ दिया जाए या सजा दी जाए, मैं दोनों तरह से राजी हूं। यह तो आत्म सम्मान कायम रखना है।

४. रिश्तेदारी में, बिरादरी में, दोस्ती यारी में जहां बराबर का सम्मान और व्यवहार लेन—देन है, यदि कोई किसी के दोस्ताना या जाइज़ मुतालबा को पूरा नहीं करता, ठुकरा देता है तो यह आत्मसम्मान को ठुकराना है।

५. पुत्र माता—पिता की, गुरु की शिष्य और पत्नी पति की, बहू सास की अवहेलना करे या बेअदबी से बोले, लोगों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सम्मान न करे तो ये बुजुर्ग के आत्मसम्मान को और अपने भी आत्म सम्मान को खोना है। मोह या स्वार्थ से माता–पिता, गुरु, पति फिर भी संगी रहता है।

६. पिता–माता, गुरु, संत महात्मा बुजुर्ग जो पूजनीय हैं, यदि वे सच्चाई से, आदर स्वार्थ या द्वेष से अपने पुत्र शिष्य, भगत का सम्मान नहीं करता या लोगों की नजर से गिराता है तो उनका अपना आत्मसम्मान बिगड़ता है। पुत्र, शिष्य, भगत को कभी ख्याल नहीं करना चाहिए कि उनका आत्मसम्मान बिगड़ा। यदि वह अपने बुजुर्गों पर क्रोधित हो जावे तो अपना आत्म–सम्मान खो बैठेंगे।

७. परमार्थ, परस्वार्थ उपकार के कार्यों में अगर छोटे–से छोटा आदमी बड़े से बड़े आदमी का तिरस्कार करता है तो बड़े का सहन करना ही आत्मसम्मान है, तिरस्कार से उसका कोई आत्मसम्मान नहीं घटता। वह इसकी शक्ति को बढ़ाता है।

८. किसी बड़े नेता या बुजुर्ग की भरी सभा में कोई घटिया आदमी भूल जाहिर कर दे तो नेता बुजुर्ग उसे स्वीकार कर लेता है कि हां मेरी भूल है, तो इसका कोई आत्म सम्मान कम नहीं होता, अपितु बढ़ता है, हाँ! अगर वह घटिया आदमी बार–बार उसकी भूल को दोहराता है, भूल स्वीकार कर लेने पर भी, तो तब चुप रहना आत्म सम्मान को खोना है, क्योंकि आदमी की नीयत खराब है।

९. दो भाई हैं, अपने माता–पिता बुजुर्ग के लिए जिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सेवा में सहायता देना दोनों का बराबर धर्म है, अगर एक भाई अपनी विवशता या असमर्थता के कारण दूसरे भाई की सेवा सहायता तलब करता है और दूसरा भाई ठुकरा देता है या बेपरवाही से उत्तर देता है या उसकी मांग या प्रार्थना को अपने स्वार्थ या भाई से द्वेष, नाराजगी के कारण कोरा जवाब दे देता है वा टाल–मटोल का जवाब दे देता है तो प्रार्थना करने वाले भाई को अपना आत्म सम्मान बिगड़ा नहीं समझना चाहिये, बल्कि उस बुजुर्ग का आत्म सम्मान नहीं किया गया जाने। हां, यदि अपने कार्य के लिए सहायता एक भाई मांगता है जरूरत समझ कर, तन की, धन की या किसी और वस्तु की और दूसरा भाई चाहे बड़ा या छोटा अपने स्वार्थ भाव या द्वेष–भाव से इन्कार कर देता है तो यह मांगने वाले भाई का ठीक आत्म–सम्मान न करना है। इससे मांगने वाले भाई का आत्मसम्मान नहीं बिगड़ा। हां, वह आत्म–सम्मान अपना खो बैठेगा यदि वह फिर–फिर इन्कार करने वाले भाई से प्रार्थना करेगा।

१०. व्यवहार में बड़ी नेकी यह है कि अगर और नेकी नहीं कर सकता तो किसी का आत्म सम्मान न बिगाड़े। नेक आदमी को चाहिए कि अपनी नेकी को कायम रखने के लिए, उसे तिरस्कार, बदले में नहीं करना चाहिए। हां, अपनी हिफाजत के लिए बेपरवाह हो जाना चाहिए। आत्म–तिरस्कार करने वाले भाई से अपने आप भी सहायता और सेवा पेश हो तो उसे धन्यवाद के साथ इन्कार कर दे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११. यह सब व्यवहार में आत्म–सम्मान के लिए बातें हैं। रूहानियत (आध्यात्मिकता) में जब भी कोई अपनी भूल स्वीकार करके अपनी तलाफी और उन्नति करनी चाहे उसके लिए माफी ही माफी है। बड़ा छोटे को और छोटा बड़े को तुरन्त माफ कर दे।

१२. कामी, क्रोधी और लोभी मनुष्य आत्म सम्मान के स्वरूप को नहीं जान सकता। लोभी तो अपना आत्म सम्मान खोता रहता है और क्रोधी दूसरे का आत्म सम्मान बिगाड़ता रहता है और कामी अपना और दूसरे दोनों का, बिगाड़ता है।

१३. यदि कोई पिता, माता, गुरु, बुजुर्ग, विद्वान् आत्म कल्याण–मार्ग या आत्म–उन्नति अथवा उस धर्म कार्य जो आत्म–जीवन का साधन है, में बाधक बनता है, तो पुत्र आदि को बेअदबी नहीं करनी चाहिए। आत्म–सम्मान न बिगाड़ना चाहिए, मगर नम्रता पूर्वक कहीं युक्ति से या विनम्र भाव से विरोध करना चाहिए और अगर इस पर भी वह बाज न आए, अपनी हठवृत्ति या अज्ञान को न छोड़े, तो भी क्रोधित न होना, बल्कि सत्याग्रह का हथियार प्रयोग में लाना उचित है। इससे दोनों के आत्म सम्मान की रक्षा होगी। याद रखना चाहिये कि धर्म सब से प्यारा और बड़ा श्रेष्ठ है। अज्ञानी मनुष्य ऐसा जान कर भी, धर्म की अन्ध प्रेरणा से धर्म को अधिक प्यारा समझ कर बुजुर्गों से लड़ पड़ता है, वह यह भूल जाता है कि बुजुर्गों के साथ विनम्र रहना ही शील या सदाचार का एक धर्म–अंग है। जब यह धर्म है तो यह भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्यारा होना चाहिए। बुजुर्ग प्यारा न हो मगर धर्म तो प्यारा है ही। इसलिए विनम्रता (अदब) को कभी न त्यागिये, इसलिये सत्याग्रह बा–अदब हथियार माना गया है–सांप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे। ७–१०–४८

विचित्र मनुष्य

१. किसी–किसी मनुष्य को प्रभु ने ऐसा बनाया है कि सारी आयु उसका अध्ययन करते रहो–तो उसके विषय में सदा सम्मति बदलते रहोगे। (वाह कुदरत) ७–११–४८

अपना समझ कर ही सेवा कर

२. जब किसी गैर मनुष्य के हाथ मुख या शरीर पर गन्दे फोड़े, रोग हों, तो उससे वह घृणा करता है–इस रीति से, वह रोग मुझे न लग जाए। पर जब वह रोग अपने ही अंग में हो–तब वह उसके दूर करने का प्रयत्न करता है। ऐसे ही मनुष्य जब दूसरे में दोष देखता है तो उससे घृणा करने लग जाता है–उसका संग नहीं चाहता–कि बदनाम होने या उससे हानि पहुंचने का डर बना रहता है। यदि उसी मनुष्य को वह अपना अंग समझ लेवे–तब उसके दोष दर करने में तन मन लगा सकता है।

दयानतदारी कब सफल

३. जब ऊपर के शासक दयानतदार हों–और मध्य का भी दयानतदार हो–तो मध्य के अधीन चाहे सैकड़ों बेईमान हों–तो इन्हें डर रहता है अपने अफसर का–कि वह जो भी हमारे विरुद्ध कहेगा ऊपर वाले उसे मानेंगे। इसलिए वे सदा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भयभीत रहते हैं।

यदि ऊपर के शासक स्वयं ही बद्दयानत हों और नीचे के भी, तो मध्य का चाहे कितना ही ईमानदार क्यों न हो, नीचे वाले उसकी आज्ञा कभी न मानेंगे, क्योंकि उनको यह विश्वास है कि ऊपर वाले हमारी तरह बद–दयानत हैं, अतः वे इसकी एक न सुनेंगे, अन्यथा हम भी बड़ों के दोष प्रकट कर देंगे।

मार्ग–प्राप्ति कैसे?

४. वही मनुष्य तो मार्ग प्राप्त कर सकता है–जिसके दिल में सच्चाई के लिए पूरा–पूरा मान और आदर है और उसे ही श्रद्धालु कहा जा सकता है। सच्चाई को सुन कर खुश होना, रुष्ट न होना, सच कहने वाले के लिए सत्कार का बढ़ना, आदर का न घटना और जोश आ जाना, उत्साह हो जाना–सच्चाई का आचरण करने के लिए। ये चिह्न आरम्भिक हैं। ८–११–४८

भण्डार सेवा की दुरूहता

सेवा कोई भी हो एक अच्छा गुण है, परन्तु भण्डार की सेवा करने वाला विष्णु के गुण को धारण करने से महान् बन जाता है, पर बनता कोई विरला है। अन्यथा साधारणतया सेवा करने वाले एक बड़ी क्षुद्रता को धारण कर पाते हैं, उनकी दृष्टि, मन, और बुद्धि और हाथ तो संकुचित हो जाते हैं और वाणी, कान क्रोध से भर जाते हैं। जहां वे महान् बन सकते हैं–वहां वे अति क्षुद्र, अपने ही उत्तम जीवन जन्म के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
घातक बन जाते हैं। वे अपनी नीति और युक्ति से सदा अपयश के भागी बनते हैं—प्रशंसा के पात्र नहीं। हां, जब कोई उनकी प्रशंसा करता देखा जावेगा वहां समझना चाहिए—कि दिखावे के लिए उनकी सेवा और स्वभाव ने रूप बदल दिया होगा—वस्तुतः नहीं। संकुचित वृत्ति—दृष्टि वाले के हाथ से खाने वाले को खाने की अधिक हिरस (तृष्णा) हो जाती है। वह रजता (तृप्त होता) नहीं। और उदार चित्त, हाथ से खाने वाले का दिल थोड़े में ही रज जाता है। यह एक चिह्न है कि यदि खाने वाला हिरस से खाता हुआ रजने की कोशिश करेगा तो उस अन्न से जो उसका मन बनेगा, उसमें लोभ की वृत्ति जग जाएगी। यदि हिरस करते हुए भी, दूसरों की दृष्टि, या खिलाने वाले की दृष्टि में गिर जाने के भय से स्वयं संकुचित हो जाता है और अधूरा खाता है तो उसके मन में ठीक यही वृत्ति जग जाएगी कि लोभ तो अवश्य आ जावेगा, जब कोई पदार्थ सामने मिलता होगा, पर तुरन्त उसे वह भय भी जग जावेगा, तो पतन होने से संभल जावेगा और लोभ का क्रियात्मक शिकार न होगा। ३१—३—४६

सफल जीवन, सुखी जीवन

जिस मनुष्य का तन, ज्ञान और धन तीनों सेवा के लिए हैं, उसका जीवन सफल है। जिसका ज्ञान और धन, दोनों तन के लिए हैं, वह भोगी विलासी मनुष्य है। वह नीच योनियों में घूमता रहेगा। जिसका ज्ञान और तन दोनों धन के लिए हैं, वह राजसिक मनुष्य व्यवहारी मनुष्य है। और जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का तन और धन ज्ञान के अधीन है वह सुखी जीवन व्यतीत करता है।

मनुष्य को सुख और मान की इच्छा तो करनी चाहिए—परन्तु यह नहीं करना चाहिए कि इतना मान मिले। धन प्राप्त करने के लिए परिश्रम करना चाहिए—पर इतना कि उस परिश्रम से सुख नष्ट न हो। जो मनुष्य चाहता तो सुख है—पर लगा धन में रहता है—वह धन के कमाने में सुख को गुम कर बैठता है। उसे न इस जन्म में सुख होगा—न अगले जन्म में। जो मनुष्य धन और मान की मात्रा निश्चित कर लेता है—उसे अवश्य अशान्ति रहती है। जो परिश्रम करने पर सुख, मान जितना—जितना प्राप्त हो जावे—उसी पर सन्तोष कर लेता है—वही सुखी है। १२—७—४६

भाव से मनुष्य का यश

एक प्यासा गृहस्थी के घर आया। उसने उसे पानी पिला दिया। एक भूखा आया झट उसे रोटी खिला दी। वह उसका यश गाता हुआ चला गया। प्यास तो जल ने बुझाई—भूख रोटी ने, गृहस्थी ने अपने शरीर के अन्दर से तो निकाल कर कुछ दिया नहीं, श्रेष्ठता किसकी हो—अन्न और जल की, परन्तु यश मनुष्य का क्यों? जल और अन्न तो प्रभु का था मनुष्य का यश इसलिए है—क्योंकि अन्न और जल अपने आप किसी की तृप्ति नहीं कर सकते, जब तक कि मनुष्य का भाव साथ न हो। यह जगत भावनामय है। मनुष्य का नाम भाव से होता है। जिस प्रकार का भाव होता है—उसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रकार का दान बन जाता है। उसी प्रकार का यश, नाम तथा फल प्राप्त होता है। मनुष्य की कोई वस्तु अपनी नहीं। सब प्रभु की देन है। केवल भाव से ही मनुष्य की जय है। प्रभु की कितनी अपार दयालुता है कि मनुष्य को कुछ भी करना और देना नहीं पड़ता, केवल थोड़ी–सी बात करनी पड़ती है–शेष सब काम प्रभु का अपना है। २४–४–४६

विवशता के दान का फल, केवल तन से परोपकार का फल

१. कंजूस धनी है। धन तो दान का फल होता है। दान तो उदार ही कर सकता है। फिर अब कंजूस में वह संस्कार क्यों नहीं? कंजूस ने धन का दान किया था, पूर्व जन्म में, पर अपने हृदय से नहीं, जबरदस्ती इससे लिया गया। इसलिए देने का फल तो धन हो गया, पर वृत्ति कंजूस बनी रही।

२. मजदूर जो ताजा कमाते हैं और दुकानदार भी, इनमें कोई धनी बन जाता है, कोई निर्धन रहता है। इसका कारण? दान, सेवा, परोपकार, यज्ञादि का साधन तन, मन, धन है। जिसने कोई भी धन दान नहीं किया। मनुष्य देह के कर्म तन से किये या मन से, उनको मनुष्य देह तो मिली, पर निर्वाह के लिए नया कर्म करना पड़ता है। इसी को ही खाता है। सदा निर्धन रहता है। मज़दूर कहलाता है।

कई एक छाबड़ी बेचने वाले, पकौड़े बेचने वाले, तो मजदूरों का जीवन बिताते हैं, ताजा कमाते और निर्धन रहते हैं। कई इस क्षुद्र काम से धन वाले बन जाते हैं, पर धन वाले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बन कर धनी या धनी–स्वभाव नहीं बन सकते। न ही अमीरों, धनवानों जैसा सुख ही प्राप्त करते हैं। इनका धन दान का तो फल नहीं है, अपितु तन से परोपकार करने का फल है। इन्हें प्रभु कृपा से एक रसायन मिल गई है, जो इस क्षुद्र काम, पकौड़े या मूंग–दाल से बने। ऐसे क्षुद्र काम में ही ऐसा रस लोगों को आता है, कि दूसरों के पास नहीं जाते और उसके पास ही ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है, और पैसा–पैसा का सौदा देकर रोजाना बीसों रुपये कमा लेते हैं और धन संग्रह कर लेते हैं।

जिनकी सौदागरी दुकानदारी में व्यापार की गन्ध रहती है, लाभ और हानि, घटा–बढ़ी भावों में होकर, इन्हें प्राप्ति होती है वह दान के फलस्वरूप होता है। १६–६–४६

कार्य सफलता में तीन सहायक

अधिकार, शक्ति और योग्यता–तीन वस्तुएं मनुष्य कार्य के लिए सहायक हैं। अधिकार न हो और शक्ति हो–तो शक्ति का कोई प्रभाव नहीं होता। एक शक्तिशाली बिना अधिकार के निर्बल पर तो अपना प्रभाव जमा सकता है, पर अपने बराबर या अधिक शक्ति वाले पर नहीं। पर अधिकार ऐसी वस्तु है कि शक्तिशाली को भी अपने अधीन कर लेता है। एक साधारण सिपाही अधिकार के कारण एक बड़े धनी मानी को बांध सकता है, एक ज्ञानी बड़े गर्व वालों को भी सच्चाई पर ला सकता है, इन्हें विनम्र बना सकता है, एक भक्त (निर्धन गरीब भी) बड़े राजाओं को झुकवा सकता है। माता–पिता यदि अपने अधिकार का ठीक प्रयोग करें,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो सन्तान को मनुष्य बना सकते हैं। इनमें अधिकार और शक्ति में योग्यता होगी, तो कार्य में सफलता सुगम हो जायेगी। उदाहरणतया—माता पिता को सन्तान के सुधारने का अधिकार है। उनमें शक्ति भी है। यदि समझाने या बर्ताव करने की योग्यता न हो तो वे सुधार नहीं कर सकते।

एक गुरु को अधिकार और विद्या की शक्ति भी है, पर योग्यता न होने से शिष्य को प्रभावित नहीं कर सकता।

मर्यादा, शिष्टाचार कब उन्नति कराने वाला

जो मर्यादा या सभ्यता, विनय रूप में होती है, उस में प्रेम संगठन और आत्मोन्नति होती है, परन्तु जो मर्यादा या सभ्यता खुशामद के रूप में काम आती है, उसमें आत्म—वञ्चना और दिखावा ही होता है।

आत्मोन्नति करने वाली होती है, यदि कोई व्यक्ति किसी का स्वागत अपने दिली भाव से स्वयं करता है, तो उसे पहले और पीछे प्रसन्नता होती है। परन्तु जो दूसरे को प्रसन्न करने के लिए, उसका साथ देता है, तो उसे कोई प्रसन्नता नहीं होती। वह अपने मित्र की शान रखने के लिए करता है, उसकी शान बढ़ाता है। और अपनी शान—मान दिखाने के लिए, वह अपने साथी मित्रों के स्वागत के लिए जाता है। इसमें (उसकी) आत्मशक्ति का ह्रास होता है। यदि स्वागत किये जाने वाले व्यक्ति को भी ऐसे समूह, सत्कार से प्रसन्नता होती है, तो वह भी आत्मवञ्चना का शिकार हो जाएगा। यदि उसे प्रसन्नता नहीं होती और इसे खुशामद समझता है—तो वह आत्मिक पथ में उन्नति करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर आए मित्र की अवहेलना

जिसे तुम दिल से चाहते हो, जिससे मिलने को हर समय इच्छुक रहते हो, जिसकी तुम बार–बार प्रशंसा करते हो, जिसकी समीपता से अपना मान, भलाई और आनन्द समझते हो और ऐसा उस पर तथा और लोगों पर प्रकट करते हो, उसकी अपने घर पर बैठे हुए होने की सूचना मिलने पर उसकी अवहेलना करते हो तो, अपने आप को धोखा देते हो। तुम पर सत्यता का ,वेश्वास नहीं हो सकेगा। ३–८–४६

चार प्रकार का विनोद

विनोद (मजाक) चार प्रकार से होता है। एक अहंकार से दूसरे को भोला या अदना (तुच्छ प्राणी) जान कर। दूसरा राग से, अपना और उसका दिल बहलाने के लिए। तीसरा द्वेष से, चिढ़ाने, उकसाने और नजर से गिराने, नजर से दूर करने। एक और प्रकार का चौथा भी है, जिसका नाम नहीं, तमाशा बनाने के लिए। इसमें कोई–अहंकार, राग या द्वेष नहीं होता। केवल आदत या संस्कार ही ऐसे होते हैं। विनोद (मजाक) एंक ऐसी चोट है, जो कभी किसी का भाग्य जगा देती है और कभी नाश करा देती है। ३–८–४६

यथार्थ वक्ता पर दोषारोपक तथा ब्रह्मनिष्ठ के अपमान कर्ता की दशा

अथर्ववेद काण्ड ८, सूक्त ४, मन्त्र ६

ओ३म् यं पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दुष्यन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान् प्र ददातु सोम आ वादधातु निर्ऋतेरुपस्थे।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो लोग परिपक्व सत्य–यथार्थ बात के उपदेश करने वाले पुरुष को बदनाम करते हैं या उस पर दोषारोपण करते हैं, अन्यों के हितकारी साधु पुरुषों की अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर निन्दा करते हैं, सौम्यगुण–युक्त राजा या शान्त स्वभाव का व्यवस्थापक धर्माधिकारी उन सत्य, दो आरोपकों को सांप या सांप के समान क्रोधी स्वभाव वाले जल्लाद, दण्डकारी को सौंप दे, निर्ऋति मृत्यु दण्डकारी विभाग के वश में कर दे।

२. ब्रह्मनिष्ठ का अपमान, ब्रह्मनिष्ठ की हानि, ब्रह्मनिष्ठ की निन्दा, गिला, ब्रह्मनिष्ठ से ईर्ष्या, द्वेष, ब्रह्मनिष्ठ का प्राण हरण ब्रह्मनिष्ठ को कलंक लगाना, ब्रह्मनिष्ठ का विरोध करना, मार्ग रोकना, इस के कार्य में विघ्न डालना, इसे चोट लगाना, शरीर को या अहं को, मन से, बुद्धि से, वाणी से, शरीर से अथवा और इन्द्रिय से, हाथ–पांव से, कामातुर होकर या मोहित होकर या बदले के, अभिमान के भाव से प्रेरित होकर ब्रह्मनिष्ठ के परिवार की किसी नारी की पवित्रता सतीत्व का भंग या नष्ट करना, इन सब के दण्ड कठोरतम विपत्ति, दुःख के रूप में भिन्न–भिन्न प्रकार से मिलते हैं। २१–६–४६

सिनेमा व्यसन लगने के कारण

३. प्रश्न "जो लोग सिनेमा देखने के व्यसनी बन जाते हैं–उनके कर्म ऐसे होते हैं क्या?"

उत्तर–उनके पूर्व संस्कार, शब्द और रूप में प्रवृत्ति रखने वाले होते हैं, बचपन में–इन्हें कोई ज्ञान (समझ) नहीं होता, कि कौन से शब्द या रूप उनको पसन्द हैं। इसी काल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यदि उत्तम धार्मिक शब्द और चित्र उनके आगे पेश किए जाएं तो संस्कार शब्द रूप के, उत्तम प्रवृत्ति के बन जाएंगे। बुरे दिखाए जावेंगे, तो प्रवृत्ति उनमें हो जावेगी, फिर वर्तमान के अनुसार प्रभाव मन चित्र पर पड़ेगा।

अन्याय के कारण

४. अन्याय केवल लोभ से नहीं होता, अपितु काम से, क्रोध से, लोभ से, मोह और अहंकार से भी होता है, इसलिए वेद भगवान् ने कहा है–"मा गृधः कस्यस्विद्धनम्"

कामी मनुष्य अपनी स्त्री से व्यभिचार के लिए अन्याय करता है। कभी मुसलमान हिन्दू से, हिन्दू मुसलमान से द्वेष से अन्याय करता है, लोभ से तो प्रसिद्ध ही है, धृतराष्ट्र जैसे धर्मात्मा राजा को मोह के लिए अन्याय करना पड़ा। कैकेयी भी इसी रोग का शिकार हुई। अहंकारी मनुष्य अभिमान से अनेक धन जन के गर्व से अन्याय करता है। ४–१–४६

संतोषी के दान का प्रभाव

१. जिसे अपनी कमाई, (धन) में संतोष है, चाहे उसको आय कम भी होगी, उसके सन्तोष भरे धन से जो दान होगा, लेने वाले, खाने वाले को भी उसी से सन्तोष होगा और तृप्ति हो जावेगी और जिसे तृष्णा लोभ है, उसके दान से लेने वाले की कभी तृप्ति नहीं होगी। १८–६–४६

धन तेज हीन, धन बल हीन

२. जिस मनुष्य के पास धन सम्पत्ति है, और वह सुखभोग के लिए ऋणग्रस्त रहता है, वह अपव्ययी है, बेढंगा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जीवन व्यतीत करता है। इसके धन में बल नहीं, अल्प आयु है। ऐसे धन में क्षणिक (थोड़े काल के लिए) यश तो हो सकता है, पर बल नहीं। कंजूस और अपव्ययी (फिजूल खर्च) के धन का परिणाम दुःख ही है। २६–७–४६

अज्ञान से प्राप्त सम्पत्ति, शक्ति और अधिकार का प्रभाव

३. अज्ञान से जो सम्पत्ति प्राप्त होती है, उसमें राग, और अज्ञान से जो शक्ति प्राप्त होती है–उसमें कठोरता (अन्याय) और अधिकार में अहंकार आ जाता है और ज्ञान से जो सम्पत्ति प्राप्त होती है, उसमें त्याग और जो शक्ति प्राप्त होती है उसमें सेवा और अधिकार में विनम्रता आ जाती है।

भिखारी और मजदूर में भेद

४. निर्बल हृष्ट–पुष्ट नाकारा भिखारी और कर्मवीर मजदूर। भिखारी और मजदूर दोनों शरीर से मजबूत होते हैं, पर भिखारी का मन निर्बल और मजदूर का मन सबल होता है। भिखारी निर्बल मन के कारण मेहनत नहीं कर सकता और मजदूर को सबल मन के कारण मांगने में शर्म आती है। ३१–५–४६

५. भक्त और ज्ञानी, कर्म रत्ती भर ज्ञान मन भर

"ऐन आउंस ऑफ ऐक्शन इज वर्थ ए टन ऑफ टॉक"

सत्यवादी कौन

६. जिस मनुष्य को शरीर, धन या प्रतिष्ठा का मोह है वह कभी पूर्ण सहनशील नहीं हो सकता, जो सहनशील नहीं उसे क्रोध अवश्य आता है, और क्रोधी सत्यवादी नहीं हो सकता। निष्कर्ष यह निकला कि अक्रोधी ही सत्यवादी हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म् ।।

द्वितीय पीठिका

संस्कार पर्वादि सम्बन्धी

संस्कारों का एक रहस्य–तत्व विकास दृष्टि से

बच्चा जब माता के गर्भ से बाहर आता है, तो सब इन्द्रियां होते हुए भी अविकसित होती हैं। पर अन्दर जिस–जिस भी तत्व का विकास होता है, उसी के अनुसार–संस्कारों का क्रम है। जात–कर्म संस्कार में शब्द (आकाश तत्व) द्वारा बच्चे के कानों में मन्त्र पढ़े जाते हैं। नामकरण संस्कार में स्पर्श (वायु तत्व) द्वारा नासिका स्पर्श से मन्त्र नाम रखने का पढ़ा जाता है। निष्क्रमण संस्कार में रूप (अग्नि तत्व) द्वारा आंख से सूर्य चन्द्रमा का दर्शन कराया जाता है। अन्न–प्राशन संस्कार में रस (जल तत्व) जिह्वा द्वारा अन्न–प्राशन कराया जाता है। समावर्तन संस्कार में और विवाह संस्कार में गन्ध (पृथ्वी तत्व) द्वारा फूल, चन्दन आदि से कराया जाता है, जब पूरा ही विकास हो जाता है।

जात–कर्म में सात बार मधु घृत चटाना, नौ बार मन्त्र जपने का रहस्य 'प्रभु–कृपा' 'प्रभु–प्रसाद'

ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु, बाहर की और अन्दर की दो प्रकार की हैं बाहर की दो प्रेम और घृणा। श्रोत्र में नौ प्रकार की शक्ति है–बाहर केवल निंदा–और स्तुति के दो कान हैं–कान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सात शक्तियां अन्दर रहती हैं। जिह्वा से खाया हुआ जैसे सात धातु अन्दर बनाता है ऐसे वाणी में सात प्रकार की शक्ति है। एक भाग इसका बाहर रहता है छः अन्दर। प्राण दस प्रकार का है। एक बाहर और नौ अन्दर रहते हैं। इसलिए जात–कर्म संस्कार में सात बार मधु घृत चटाते हैं सात मन्त्रों से और नौ मन्त्रों से कान में मन्त्र पढ़े जाते हैं। और नाम धरते समय नासिका के अग्रभाग द्वार पर जो अंगुली छू कर मन्त्र बोला जाता है–इस में नौ तो पुरुषार्थ करने के हैं, एक उसका फल और उत्तर है। नौ में से चार ज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं और पांच पुरुषार्थ कर्म से। इसलिए साधक के लिए सब से प्रथम प्राण का शोधन है। फिर कान का, फिर वाणी का, फिर आंख का। जितना–जितना प्राण शुद्ध होगा उतना–उतना ही कान, वाणी, आंख का संयम होगा। बिना प्राण शोधे, या जब तक सारे के सारे प्राण वशीभूत नहीं होते–तब तक और इन्द्रियों का पूर्ण शोधन नहीं हो सकेगा। यदि कोई मौन रहता है, वाणी का संयम करता है, एकांतवास करता है, संसर्ग से भी बचा हुआ है, कान से स्तुति निन्दा नहीं सुनता, आंख से भी कोई संसर्ग नहीं बनाता। यदि प्राण का शोधन नहीं तो जब भी संसर्ग होगा–तो सब इन्द्रियां बन्धे पानी के छूटते समय की तरह अत्यन्त वेग से प्रकट होंगी। प्राण की शुद्धि इसे अन्तर करने से होती है। स्थूल प्राण तो व्यायाम से भी शुद्ध हो जाता है, उपवास से भी शुद्ध हो जाता है पर प्राणमय–कोष अन्तर प्राणयाम और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्याहार से शुद्ध होता है। केवल प्राणायाम भी प्राणमय–कोष को शुद्ध नहीं कर सकता, वह उप–प्राणों की शुद्धि करता है, व्यान समान की गति ठीक करता है, पर अन्तर प्राण–प्राण अपान के एक होने से ही शुद्ध होता है। १२–१२–४८

नामकरण में तिथि नक्षत्र देवताओं का जीवन पर प्रभाव

प्रभु–कृपा

कितने समय से यह प्रश्न हल नहीं हो पाया था, कि नामकरण संस्कार में जन्म तिथि देवता, नक्षत्र–नक्षत्र देवता की आहुति क्यों दी जाती है? आज पूज्य देव, यज्ञ संस्कारों के प्रथम पथ प्रदर्शक मेरे पूज्य महर्षि दयानन्द जी महाराज के प्रति दीपमाला के दिवस पर श्रद्धांजलि भेंट करने के लिए ध्यान में बैठा, विचार कर रहा था कि यह प्रश्न हल हो गया। जैसे नाम रखते समय मनुष्य योनि में आने का आदेश पहेली रूप–**"कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि"**

आदि से बच्चे की नासिका को अंगुली लगा कर बोला जाता है, उसे उद्‌बुद्ध करने के लिए। ऐसे ही तिथि की आहुति का तात्पर्य है, वह ऐसा जीवन व्यतीत करे जैसे उस तिथि का देवता है। और वैसे भाग्य वाला हो, जिस नक्षत्र में वह पैदा हुआ है, ताकि उसकी जन्म तिथि सदा मनाई जाती रहे–यह एक सूचना है, जीवन के लिए।

प्रभु देव का कोटानुकोटि धन्यवाद है। प्रातःकाल उन ऋषियों के सम्बन्ध में जिन्होंने मुक्ति प्राप्त की, शास्त्र बनाए, उनका जन्म दिन मालूम है न मरण! तो प्रभु कृपा से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक–चित्त होते ही उत्तर मिल गया कि वे नित्य हैं, उनकी स्मृति नित्य मनाई जाती है। संसार में उत्तरोत्तर स्मृति होती है। नौकर अपने मालिक की, पुत्र अपने माता–पिता–गुरु की पूजा करता है, शूद्र सब उत्तम वर्णों की। और वर्णों में वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण की, ब्राह्मण संन्यासी की पूजा करता है। संन्यासी को देव माना गया है। ये विद्वान् जो देव कहलाते हैं, इन देवों में वे कपिल, कणाद आदि महर्षि ऊंचे देव हैं। इन्हीं की शिक्षा को ये प्रतिदिन पढ़ते–पढ़ाते हैं। यही उनकी पुण्य स्मृति विद्वानों में नित्य बनी रहती है।

२. "कोऽसि–कतमोऽसि...." वाला मन्त्र आज पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष हो गया, कि इस मन्त्र के तीन भाग हैं–पहला भाग तो है–पिता अपना ऋण बताता है–"यस्य ते नामामन्महि..." कि हमने तेरा पालन सोम से किया है–यह अवस्था उसे निचली अवस्था कम से कम पुत्र बनाने की है–कि भूमि पर वीर सन्तान पैदा करके लाखों प्राणियों का पालन–पोषण–रक्षण करें, जिस से वह भूलोक में मान से याद किया जावे।

दूसरी अवस्था है, भुवः लोक की–जिससे कि जन्म–तिथि की आहुति दी जाती है। तीसरी अवस्था है नक्षत्र और उसके देवता की। यह उन देवों के लिए है जो नित पूजे जाते हैं, मुक्त हो गए, शास्त्र रच गए, जन्म–जन्मान्तर की तपस्या और सत्य की खोज से वह अपना काम पूरा कर गए। तिथि तो चंद्रमा की गर्दिश से बदलती है, पर नक्षत्र आकाश में सदा स्थिर रहता है। संस्कार समय आहुति तो नीचे से ऊंचे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्जे तक दी जाती है। चाहे भावना सब की बहुत ऊंची होती है, पर आवश्यक नहीं कि सब ही ऊंचे बन सकें इसलिए छोटे से छोटे दर्जे की भी, जो साधारण मनुष्यों से ऊपर हो, साथ कर ली जाती है। तिथि का देवता तो वही रहता है पर नक्षत्र उसी तिथि का वही नहीं रहता—जो शुक्ल पक्ष की तिथि का था वही कृष्ण पक्ष में भी हो। ऋषि दयानन्द जी महाराज का जन्म—बोधोत्सव पवित्र शिवरात्रि पर मनाया जाता है। यह भी पुष्टि करता है कि जन्म तिथि केवल आत्म—बोध के लिए है। हजरत मुहम्मद साहब को सोमवार नबोअत मिली। श्री अरविन्द को १५ नवम्बर को सिद्धि प्राप्त हुई। उनके वही दिन मनाए जाते हैं। तिथि और देवता, नक्षत्र और देवता की आहुति का एक और रहस्य भी है। नक्षत्र २७/२८ हैं। बच्चा चन्द्रमा के २८० दिन में १० मास में पैदा होता है। अगर बच्चा उसी नक्षत्र में पैदा हो जिस तिथि, नक्षत्र में उसका गर्भ हुआ था, तो पूर्ण पुरुष बनेगा। शरीर, मन आत्मा। अगर गर्भ—तिथि और जन्म—तिथि नक्षत्र में भेद हो तो दोनों तिथि का जो देवता है, उसके गुणों में से कोई विशेष गुण इसके शरीर में भौतिक रूप से होगा और नक्षत्रों के देवताओं के गुण का कोई विशेष गुण इसकी मन—बुद्धि में अवश्य होगा। कोई मनुष्य ऐसा नहीं—पतित से पतित भी, जिस में कोई गुण—विशेष न हो। जुआरी, चोर चिकार भी देखे गए हैं कि उनमें भी कोई न कोई ऐसा गुण होता है, जो मान्य पुरुषों में पाया जाता है। जुआरी आम तौर पर वचन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पक्के होते हैं। शराबी, जुआरी ही प्लेग के दिनों में वीरता से सेवा करने वाले पाए जाते हैं। ८–१०–४८

मुण्डन क्यों?

मुंडन संस्कार–रजस्वला स्त्री जब गर्भ धारण करती है–तो बच्चे की पालना उसी खून से होती है, जो मासिक धर्म में आना बन्द हो जाता है। वह रक्त सख्त गरम होता है। प्रभु की लीला अद्भुत है–कि उस रक्त के तीन भाग कर देता है, एक स्थूल–भाग, जो अत्यन्त गरम होता है उससे लोम और बाल बनते हैं। दूसरा सूक्ष्म भाग जो समशीतोष्ण होता है, उससे शरीर की पालना होती है। तीसरा अति सूक्ष्म भाग–जिससे बच्चे के विचार–बुद्धि के तत्त्व बनते रहते हैं। इसलिए स्त्री को ऋतुमती भी कहते हैं। ऋतु–ज्ञान और कर्म को भी कहते हैं–अर्थात् बुद्धि और विचार को। कर्मानुसार बुद्धि विचार बनते हैं। बाहर से सख्त गर्म हिस्से से बने बाल में बुद्धि के नाश करने के परमाणु होते हैं (पागलपन के)। इसलिए उतारे जाते हैं।

मृतक पितरों का श्राद्ध

दिवस–जन्मदिवस व तिथि किन–किन की

१. दिन उनके मनाए जाते हैं–जो दिन की तरह प्रकाश करने वाले हुए, जैसे दिन अंधकार का नाश करता है, और सब सोये हुओं को जगा देता है, चोर डाकू से सुरक्षित कराता है, जैसी जो वस्तु है वैसा उस का ज्ञान कराता है। ऐसे ही जो मनुष्य अज्ञान का नाश करता, ख्वाबे गफलत,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आलसी मनुष्यों को बेदार करता (स्वप्न प्रमादी मनुष्य को जगाता) और तबाहमात (भ्रान्तियों) से बचाता है, कुमार्ग से सुमार्ग की ओर ले आता और सत्य असत्य का विवेक कराने वाला होता है, वही महापुरुष कहलाता और उसका दिन मनाया जाता हैं।

२. तिथि उनकी मनाई जाती है, जो स्थितप्रज्ञ होते हैं। तिथि का सम्बन्ध चन्द्रमा से है और चन्द्रमा रात्रि का देवता है—जो रात्रि से मतलब—मुसीबत, दुःख और भीड़ के समय जो चन्द्रमा की तरह शीतल शांत—स्थित रहता है—उसकी तिथि मनाई जाती है। दिन का संबंध सूर्य से है, तिथि का संबंध चन्द्रमा से है।

६. जन्म—दिन उनका मनाया जाता है—जो ज्ञान का प्रकाश करते, जीव को प्रकृति और परमेश्वर का भेद बतलाते, नित्यानित्य, सत्यासत्य का ज्ञान कराते हैं। और मृत्यु दिवस उनका मनाया जाता है—जो अपने कर्त्तव्य—कर्म को ध्येय बना कर, अपना जीवन बलिदान, उस कर्म पर कर जाते हैं।

अहोई के त्योहार का मर्म

स्त्रियों की संज्ञा

आज की एक और बात विचित्र है, ध्यान देने योग्य है। जमींदारों की स्त्रियां अपने घर में रखे खलवार में से थोड़े दाने निकाल कर दीवारों पर बो देती हैं। इन नवरात्रों में जो उग आते हैं तो वह खुशी मनाई जाती है। और उसे उतार कर गान और मान से नहर में छोड़ आती हैं और वह तैरता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चला जाता है उसका नाम रखा 'संज्ञा'। खुशी इस बात की है कि हमारे घर के स्वामी जमींदार भी तर जावेंगे, जैसे 'संज्ञा' तैर रही है। सब दाने हमारे खलवार के निर्दोष हैं, बीज बोने के योग्य हैं। जिस भूमि में माता ने पैदा कर दिये थे, अब उन्हें भेंट देने पर एक–एक के सैकड़ों देगी। अगर किसी के दान न उगें तो भय हो जावेगा कि हमारी 'संज्ञा' तो 'संज्ञा' हो गई, हम डूब जावेंगे। कारण यह है कि हम को अब बीज उधार लेना पड़ेगा–फिर ऋण उतारने के लिए दीन होना पड़ेगा–चिन्तातुर होना पड़ेगा।

आप जानते हैं–दाना वह नहीं उगा करता, जिसे पानी की लाग हो गयी हो, या दीमक कीड़े सुसरी ने खा लिया हो। ठीक ऐसे ही मनुष्य जीवन की खेती, जिस की इंद्रियों को विषयों का पानी लग़ गया हो अथवा अहंकार कीड़े–घुन ने खोखला कर दिया हो–उसकी तो तकदीर फूट गई है।

१२–१०–४८

विजय दशमी

१. आर्य जाति में जितने भी पर्व आते हैं, उन सबमें खुशी ही खुशी मनाई जाती है। खुशी तब होती है, जब सब कुछ प्राप्त हो, दुःख का नाम ही न हो। पर सुख फल है पुण्य कर्मों का और दुःख होता है पाप कर्मों का फल।

२. यह पर्व क्षत्रिय जाति का गिना जाता है। इससे पहले वर्षा ऋतु रहती है। वर्षा ऋतु के कारण सब चीजों में गीलापन आ जाता है। धातुओं में जंग (मोर्चा) लग जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रियों के फौजी, युद्ध के अस्त्र–शस्त्रों में भी चमक कम हो जाती है। इन दिनों में वर्षा समाप्त हो जाती है, और क्षत्रिय लोग अपने सब शस्त्रों को खूब मांजते और चमकदार बनाते हैं और फिर प्रदर्शनी में रखे जाते हैं।

३. राजों में उत्तम राजा राम गिना जाता है। और एक आदर्श राजा को संसार के सम्मुख रखने के लिए राम के नाम से विजय दशमी पर उसके चरित्र को पेश किया जाता है।

४. आज का पर्व, लोगों को क्या शिक्षा देता है–इसे विचार कीजिए। रावण के दस सिर बनाए जाते हैं–ग्यारहवां गधे का सिर लगा दिया जाता है, और राम के बाणों से दस सिर उसके काटे जाते हैं। यह एक कार्टून बना कर पेश किया जाता है। असली रहस्य क्या है? रावण तो मनुष्य था–उस के दस सिर कैसे हो सकते हैं? सिर तो क्या था–पर वह चार वेद छः शास्त्र का पण्डित था–ये थे दस सिर।

५. चाहिए तो यह था कि वह इतना विद्वान् ज्ञानी होकर देवता कहलाता पर विद्या का दुरुपयोग करके राक्षस कहलाया। इसकी इन्द्रियां दूषित थीं और राम ने अपनी दसों इन्द्रियों पर काबू पाया हुआ था।

६. रावण में काम, क्रोध, मोह, अहंकार, हिंसा, झूठ, चोरी, हठ, मत्सर–दस अवगुण थे–और राम में इसके विपरीत सब गुण थे, जिससे उसने दस अवगुणों–शत्रुओं पर और दस इन्द्रियों, दस प्राणों पर विजय पाई हुई थी। उसके राज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का नाम इसीलिए "राम राज" प्रसिद्ध है।

७. राम राज किसे कहते हैं, राम राज में क्या बात विशेष थी, जिसके लिए आज भी हर एक चाहता है कि राम राज हो? इस राम राज का वर्णन वाल्मीकि रामायण युद्ध काण्ड सर्ग १३१ श्लोक ६४ में आया है कि–

१. राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्जातिबान्धवः।।

अर्थ–धर्मात्मा श्री रामचन्द्र जी ने सिंहासन पर बैठकर अपने सहोदरों तथा भाइयों के साथ–साथ अथवा उनकी सहायता से विविध प्रकार के यज्ञ किये।

२. ना प्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति।।

अर्थ–जब तक श्री रामचन्द्र जी ने राज किया तब तक उनके राज्य काल में न तो कोई स्त्री विधवा हुई, न किसी को रोग ने सताया, न किसी को सांप ने ही काटा।

३. निर्दस्युर्भवल्लोको नान्यार्थं कञ्चिदस्पृशत्।
न चा सा वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते।।

अर्थ–डाकुओं, चोरों का तो राम राज्य में नाम तक नहीं था, दूसरे के धन को लेना कहां रहा–जहां तहां उसे कोई छूता तक न था। राम राज्य में ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि किसी बूढ़े ने बालक की अन्त्येष्टि क्रिया की हो।

४. सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वः धर्मपरोऽभवत्।
राममेवानुपश्यन्तो नाप्यहिंसन् परस्परम्।।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—राम राज्य में सब अपने—अपने वर्ण अनुसार कार्य में तत्पर रहते थे, इसलिए सब प्रसन्न थे। रामचन्द्र जी उदास या दुःखी होंगे, इसी विचार से आपस में लोग किसी का जी तक न दुखाते थे।

५. नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः।
काले वर्षो पर्जन्यः सुखस्पर्शाश्च मारुतः।।

अर्थ—वृक्षों में सदा फूल लगे रहते थे और वे सदा फला करते थे। उनके गूदेदार डालियां विस्तृत हुआ करती थीं। समय के अनुसार वर्षा होती थी, और सुख—स्पर्श वायु चला करती थी।

६. ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः।
सर्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः।।

अर्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब लोभ से रहित थे। सब लोग अपना—अपना काम करते थे। अपने—अपने कार्य से संतुष्ट थे।

७. आसन्प्रजा धर्मरताः रामे शास्ति नानृतः।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः।।

अर्थ—सारी प्रजा धर्मरत और झूठ से दूर रहती थी। लोग शुभ लक्षणों से युक्त पाए जाते थे और सब के सब धर्म परायण थे।

८. बड़ा विजयी वह है—जिसने अहंकार पर विजय पाई। जब अहंकार आ जाता है तब सब पाप मनुष्य में अपने आप खिंचे चले आते हैं। आजकल संसार में अहंकार ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकार है। बालक से बूढ़ा तक अभिमान में घुसा हुआ है। और अभिमान न भी हो, किसी में, तो भी जाति अभिमान से नीच से नीच चमार और भंगी भी नहीं बच सका। एक चमार दूसरी जाति के चमार को अपने से नीच समझता है, उसके हाथ का नहीं खाता। बड़ी जातियों का तो कहना ही क्या!

९. जहां अहंकार होता है—वहां धर्म की बात, भगवान् की बात कौन सुनता है? अहंकार सब से बड़ा पाप है, और सब प्रकार के पाप कराता है—अन्त इसका मौत है। जब अहंकार मनुष्य में बढ़ जाता है—तो मृत्यु ही इसे आ निगलती है।

१०. मनुष्य का जन्म दुर्बल है। भाइयो! जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों पर विजयी न होगा—उसका बार—बार जन्म होगा। जो मनुष्य—जीव इस नर तन को पाकर विद्या नहीं पढ़ता, और अपने स्वामी प्रभु की भक्ति नहीं करता, जो दीन दुखी की सहायता नहीं करता, जिस प्रभु ने घर, बार, परिवार, धन सम्पत्ति और मकान, खान—पान और सब सामान प्रदान किये हैं, और जिसने २१६०० श्वास प्रतिदिन दिए हैं, जिन से हम जीते हैं, बिना मूल्य लिए देता है। हम इसमें से सौ, हजार श्वास भी उसके अर्पण नहीं करेंगे तो फिर हम को कैसे मनुष्य जन्म देगा? जब सारा मिला धन हम ने विषयों में गंवा लुटा दिया, और मालिक की अमानत में खयानत की, तो हमें पशु पक्षी कीट बनना पड़ेगा।

समय है, जीते जी अपने कल्याण और आने वाली संतान के सम्मान के लिए हम कुछ नेक कमाई कर लें।

१२—१०—४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा बन्धन का महत्व

१. रक्षा किसकी की जाती है? कमजोर की।

२. किस से रक्षा की आवश्यकता है? शत्रुओं से।

३. कमजोरी कब और किसमें आती है? क्यों आती है? शत्रु कौन है?

कमजोरी शरीर में, मन में, बुद्धि में, आत्मा में आती है, शरीर में कमजोरी वीर्य की कमी से।

मन में कमजोरी श्रद्धा की कमी से।

बुद्धि में कमजोरी विश्वास की कमी से।

विषयों में रुचि होने से वीर्य में।

व्यवहार में रुचि होने से मन में, संशय से बुद्धि में और अहंकार से आत्मा में कमजोरी आती है।

वैसे तो शत्रु बहुत हैं—पर इनका आरम्भ—प्रवेश एक से होता है। माया का प्रपंच फैला हुआ है, और शरीर, सूक्ष्म शरीर में भी इसी की आसुरी शक्तियां काम कर रही हैं। संशय एक गुप्तचर है—इस माया का। वह कुतर्क के शास्त्र के लिए अहंकार की खुशामद करता है। उसे प्रसन्न करके बुद्धि में आ विराजता है, क्योंकि अहंकार का स्थान यही है। यह कुतर्क बुद्धि को ऐसे झमेले में डालता है कि उसे विश्वासपद से गिरा देता है। बस यहीं से आध्यात्मिक कमजोरी का आरम्भ होता है और फिर धीरे—धीरे अहंकार जो प्रधान मन्त्री माया का है, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को बुला लेता है। और ये ही शत्रु, महाशत्रु, जीवात्मा के बन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाते हैं, अथवा ज्ञान के। इन से रक्षा के लिए रक्षाबन्धन या रक्षा का सूत्र बांधा जाता है। सो वह अपने आप नहीं, अपितु बंधवाया जाता है। बांधने वाला ब्राह्मण रक्षा साधन बनाता है और साधन करने के लिए व्रत धारण कराता है।

सब से पहले शरीर रक्षा के लिए, विषयों से बचे रहने के लिए ब्रह्मचर्य का साधन बतलाता है।

दूसरे, मन की रक्षा के लिए, व्यवहार शुद्धि के लिए, कमाये अर्थ को उपकार, सेवा और यज्ञ में श्रद्धा उत्पन्न करता है।

तीसरे, बुद्धि की रक्षा के लिए, सत्संग, स्वाध्याय वेद की कैद लगाता है।

चौथे, आत्मा की रक्षा के लिए भक्ति, ध्यान का उपाय सिखाता है। एक नियत काल तक साधना करने का उपदेश देता है।

ग्रीष्म ऋतु में सब चीजें गरम हो जाती हैं और फैलती हैं। यही प्राकृतिक नियम है। वीर्य भी शरीर में ऐसे ही गर्म होकर बिखरा रहता है। ग्रीष्म ऋतु में काम और अहंकार के परमाणु और वर्षा में काम और क्रोध के परमाणु अधिक होते हैं। कुत्तों को देखो!

वर्षा ऋतु में जठराग्नि मंद होने से बल कम होता है और साथ ही वर्षा में जो विषैले जन्तु अधिक पैदा होते हैं और जल की अधिकता से और जल के न सूखने से जमीन में सड़ांध विष पैदा हो जाता है। इससे पागलपन के विषैले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु आकाश में, वायु में घुसे रहते हैं। ब्रह्मचर्य का रखना आवश्यक हो जाता है। फिर शरद् ऋतु में नाश के परमाणु होते हैं। जहां जल सूखते हैं वहां वीर्य फैले हुए और मंदाग्नि होते हुए भी विषैले परमाणु आ जाते हैं। तब इस ऋतु में प्रकृति वीर्य से भी इन्हें जुदा, नाश करने में लगी होती है, शुद्ध करने में, तब भी ब्रह्मचर्य का रहना आवश्यक है। इसके बाद हेमन्त ऋतु का आरम्भ होता है—तो वीर्य—शुद्ध अपने स्थान में जमा (एकत्र) होता है। इस समय शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक शक्ति का सदुपयोग करना उचित है। योगी भक्त अपने ध्यान में, बौद्धिक अपने विचार में, मानसिक अपने व्यवहार में, शारीरिक अपने बल का लाभ उठा लेवें तो सुखी रहें। अर्थात् मार्गशीर्ष की अमावस तक यह व्रत होना चाहिए।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म् ।।

तृतीय पीठिका

उपासना काण्ड

ब्रह्मचर्य एक व्रत है

ब्रह्म के गुणों को धारण करने के लिए। ब्रह्म का अर्थ क्या है? मोटा अर्थ ब्रह्म का है बड़ा। कौन बड़ा होता है और उनमें विवेक करना पड़ेगा, क्यों अमुक बड़ा है? मगर उत्पन्न करने वाला जिसे माता–पिता कहें बड़ा होता ही है, क्योंकि पैदा होने वाली चीज इससे अपने आप छोटी होगी। इसलिए ब्रह्म का दूसरा अर्थ पैदा करने वाला, अर्थात् ऐसा बड़ा जिसमें पैदा करने के गुणों की बड़ाई हो। बस संसार में तमाम वह पदार्थ जिनमें यह गुण होगा वह ब्रह्म कहला सकते हैं, परमात्मा तो ब्रह्म है ही। प्रकृति को भी ब्रह्म कहा गया है। अब तृण से लेकर सूर्य तक। सूर्य ब्रह्म कहला सकता है, क्योंकि सूर्य सब ज्योतियों से बड़ा और ज्योति पैदा करने वाला है। सब को देने वाला और प्राण को पैदा करने वाला है। पृथ्वी से आकाश तक में, आकाश सब में बड़ा है, इससे बड़ा कोई नहीं। इसलिए न पृथ्वी ब्रह्म, न जल, अग्नि और वायु। सिर्फ आकाश को ब्रह्म कह सकते हैं। वेद को भी ब्रह्म कहा गया है क्योंकि वेद से ही सब विद्यायें निकली हैं। शरीर में मन को ब्रह्म कहा गया है। धातुओं में वीर्य सब से बड़ा है उसे ब्रह्म कहा गया है। ऐसा ही सब पर लगावें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामाजिक तथा आध्यात्मिक मार्ग की सफलता के भिन्न साधन

सामाजिक–व्यावहारिक मार्ग में सफलता बुद्धि–युक्त कर्म से होती है, पर आध्यात्मिक मार्ग में सफलता मन के शान्तचित्त, समाहित चित्त होने से होती है। सामाजिक मार्ग बाह्य का मार्ग है–इसमें व्यक्ति के आंतरिक दोष, चंचलता या क्रोध आदि बाधक नहीं हैं। पर आध्यात्मिक मार्ग तो आत्म–दर्शन परमात्म–दर्शन के लिए होता है। इसमें मानसिक निर्बलता दुर्बलता जो काम, मोह और क्रोध, लोभ से उत्पन्न होती है, वह सदा बाधक रहती है। अभ्यास चाहे दिन रात भी किया जाता रहे, जब तक मानसिक क्षेत्र शुद्ध न हो, तब तक आत्म विकास, आत्म–प्रकाश नहीं होता।

विश्वास और श्रद्धा

वैसे तो प्रत्येक शिक्षा और विद्या ग्रहण करने में विश्वास और श्रद्धा की आवश्यकता होती है। शारीरिक रोग हो या मानसिक रोग हो, उसके उपाय में, आचरण करने में विश्वास आवश्यक है–अन्यथा सफलता नहीं मिलती। आध्यात्मिक मार्ग में–ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए तो जब तक पूर्ण रूप से अपने चित्त को अर्पण न कर दिया जाए–अपनी बुद्धि में लेश–मात्र भी संशय न रह जावे–तब तक सफलता नहीं हो सकती। मन में श्रद्धा हो, और बुद्धि में पूर्ण विश्वास हो तो बिना किसी विशेष परिश्रम के–शिक्षक की विचार–धारा अपने आप विद्यार्थी के–या साधक के मन में प्रवेश करती रहती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है–क्योंकि दोनों एक चित्त, एक–मन हो जाते हैं, बलवान् आत्मा की धारा (करेण्ट) चित्त शक्ति द्वारा दोनों में एक समान और एक ही समय प्रवेश करती है। यह तब होता है, जब अपने लक्ष्य में प्रीति और सत्यता समान हो। जितनी प्रीति हो–उतनी वह सच्ची हो, जितना सत्य हो–उतनी उससे प्रीति सच्ची हो।

असफलता का कारण यही होता है कि सत्यता और प्रीति में समानता नहीं होती, प्रीति में अहम् और सत्यता में मम नहीं है। जहां अहम् तो नहीं है–पर मम है–वहां भी कमी, जहां मम नहीं पर अहम् है, वहां भी कमी। इसलिए कहा गया है कि **"संशयात्मा विनश्यति"** (गीता)

सत्य की प्राप्ति, सत्य में प्रेम और सत्य का पुजारी कैसे बना जाये?

उत्तर–बाहर से ज्ञान हो और अन्दर से वैराग्य हो अर्थात् जो वस्तु जैसी है–वैसा ही उसका ज्ञान हो और नाशवान् बेवफा से वैराग्य और अविनाशी, सदा साथ देने वाले से प्रेम हो।

मनुष्य के विचार में तामसिक, राजसिक और सात्विक तीन प्रकार के दोष रहते हैं। सत्य की प्राप्ति नहीं होती।

तामसिक दोष–जानता है कि यह ठीक है–पर स्वार्थ के कारण, अपने स्वार्थ–साधन के लिए, असत्य बोल देता है। राजसिक दोष–दूसरे की खुशामद के लिए–न्यूनाधिक–असत्य बोल देना।

सात्विक दोष यह है, कि दूसरे की भलाई को दृष्टि में रखकर असत्य बोल कर भलाई करना। २०–१–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरु की आवश्यकता

जो प्रेम प्रकाश (ज्ञान) से रहित होता है—वह मोह और जड़ होता है। जो ज्ञान सहित होता है वही आनन्द और बल को बढ़ाने वाला होता है। बालक के नख से शिखा तक में माता—पिता का रज—वीर्य समाया होता है। स्त्री पति से और पति स्त्री से जो प्रेम करता है वह कामजनित और काम जन्य होता है। बच्चे से प्रेम होता है वह मोहजनित होता है। बच्चे (माता—पिता चाहे कितने ही विद्वान् क्यों न हों) के भीतर प्रकाश नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि प्रकाश तो आत्मा में होता है—शरीर में नहीं होता। माता—पिता बालक के शरीर होते हैं। शरीर जड़ है। और बालक स्वयं माता—पिता की आत्मा कहलाता है। इसलिए इस जड़ता और अंधकार को दूर कराने के लिए इन्हें गुरु के समर्पण करना पड़ता है। इस अंधकार के दो पर्दे हैं—भीतर और बाहर। एक स्वार्थ (मम), दूसरा अहम्।

मम का त्याग—इसका त्याग नमस्कार से होता है। यह पहला चिह्न है; प्रतीक मात्र। फिर ज्यों—ज्यों गुरु संग से विद्या उपदेश को प्राप्त करता और तप और सेवा से विनीत होता जाता है—त्यों—त्यों आंतरिक रूप मम और अहम् का त्याग होता जाता है। ११—२—४८

निस्वार्थी प्रेमपात्र महाभाग्यवान्

मन्त्र— ओ३म् देवानां भद्रा सुमति र्ऋजूयताम्।

मित्र और सखा जब प्रेमावेश में होते हैं—तो देखते ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना सोचे–समझे, सब कुछ भूल कर आलिंगनबद्ध हो जाते हैं–हृदय के साथ हृदय को खूब जोर से मिलाने की क्रीड़ा करते हैं–मानों एक–दूसरे के हृदय में समा जाते हैं। पति–पत्नी से, मित्र–मित्र से, माता–पिता पुत्र से तो सामान्यतया देखे जाते हैं। इनमें तो मोह भी काम करता दिखाई देता है, पर जब कोई संत साधु–जो निःस्वार्थ हो, किसी अपने से छोटे पर गृहस्थी या विरक्त को प्रेम में आकर हृदय से लगाए–तो उसे बड़ा ही भाग्यशाली समझना चाहिए, क्योंकि इस स्वाभाविक प्रेम में बुजुर्ग की मैत्री नहीं, अपितु दया का भाव प्रभु प्रेरित होकर हो रहा होता है। उससे हृदय के अनेक संशय और क्लेश मिट जाते हैं। उसके जीवन में जीवन आ जाता है। २५–७–४६

शिक्षा का महत्त्व या उद्देश्य

श्री यास्काचार्य आचार्य, के तीन अक्षरों में इसका हल कर देते हैं–

१. 'क' जो शिष्य को सदाचार ग्रहण करा दे। 'ख' इसमें शब्दों के अर्थों का संचय करे। 'ग' इसकी बुद्धि को बढ़ावे अर्थात् विद्यार्थियों में सदाचार का निर्माण करे।

२. उसे प्रत्येक शब्द के अर्थ से साक्षात् कराते हुए, उसमें वस्तुओं का यथार्थ बोध संचित कर दे।

३. उसकी ईश्वर–प्रदत्त बुद्धि को पूर्णतया विकसित कर दे। यूनिवर्सिटी की शिक्षा में संख्या १. और ३. को तो बिल्कुल भुलाया हुआ है। सदाचार निर्माण तो शिक्षा क्षेत्र से बहिष्कृत है ही। सार्वदेशिक–दिसम्बर ४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा जीवन में सौन्दर्य लाती है। शिक्षा में चार बातें होनी अनिवार्य हैं। १. श्रम, २. संयम, ३. सदाचार, ४. सेवा। जिस वर्णाश्रम में यह चार प्रकार शिक्षा दी जाती है, वही वर्ण या आश्रम सफल है।

गुरु की स्पर्शनादि तीन शक्तियां और प्रभाव

गुरु की तीन शक्तियां होती हैं—स्पर्शन, दर्शन, सम्भाषण। १. हाथ की अंगुली से मस्तिष्क पर छूने से प्राण में, २. शब्द से मन और ३. दृष्टि से आत्मा में प्रभाव पड़ता है—यदि शिष्य अपना चित्त ढीला छोड़ देवे। ३—१०—४६

आशीर्वाद, नम्र और श्रद्धालु भक्त को

जब मैं किसी बुजुर्ग, महिला, सन्त को पूज्य भाव से आसन दूं और स्वयं छोटा बन कर निचला आसन ग्रहण करूं, और वह उसे स्वीकार करके मुझे छोटा समझ लेवे—तो उनकी आशीर्वाद मुझे अवश्य मिलती रहेगी, और मेरे अपमान की रक्षा होगी। यदि वे मुझे छोटा स्वीकार न करें, और बराबर का आसन मैं स्वीकार कर लूं—तो मेरे अन्दर गुप्त रूप से अहंकार वृत्ति या बराबरी का भाव जम जाएगा।

कोई बुजुर्ग महात्मा मेरे अपने स्थान पर मुझे अपने बराबर का आसन दे दें, और मैं स्वीकार कर लूं—तो मेरे अन्दर भी अभिमान जरूर उत्पन्न हो जावेगा। मेरी सच्ची नम्रता और श्रद्धा में भक्ति का रूप न रहेगा।

गुरु शिष्य में भाव शिथिलता और फल

शिष्य जिस श्रद्धा, विश्वास और भक्ति भाव से गुरु की शरण में आरम्भ में जाता है—उसे अंत तक नहीं स्थिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखता। और जिस अधिकार से गुरु, शिष्य को स्वीकार करता है—उस अधिकार की जिम्मेदारी का पालन नहीं करता। दोनों में प्रीति और एकता कम हो जाती है या नहीं रहती है।

हमारा गुरु और माता—पिता से सम्बन्ध किस प्रकार का?

माता—पिता और सन्तान में तो सम्बन्ध भोग के लिए है, पर गुरु और शिष्य में सम्बन्ध कर्म के लिए होता है।

अहंकार अर्पण का फल

जब स्त्री और पुरुष का अहंकार जुदा—जुदा रहता है, एक—दूसरे के अर्पण नहीं होता—तब उनमें एक दूसरे पर विश्वास नहीं रहता और न वे एक दूसरे पर निछावर हो सकते हैं। और जब शिष्य का अहंकार गुरु के अर्पण नहीं होता—तब वह गुरु के उपदेश और ज्ञान गुण को धारण नहीं कर सकता। तीन प्रकार के अभिमान के कारण शिष्य वञ्चित रहता है। धन—अभिमान से तो गुरु—उपदेश पर आचरण नहीं करता। विद्या—अभिमान या विद्याभिमान के अहंकार से जिज्ञासा नहीं करता।

सेवा—अभिमान से वह सुनता नहीं, श्रवण नहीं करता। सेवा को ही सब कुछ समझ लेता है।

भक्त और ज्ञानी, कर्म रत्ती भर, ज्ञान मन भर

"ऐन औंस ऑफ प्रैक्टिस इज बैटर देन ए टन ऑफ थ्योरी"

जानने के लिए तो बहुत चीजें हैं—पर करने के लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही कर्म है। बहुत जानने से तो इतना लाभ नहीं—जितना बहुत करने से है। थोड़ा जानना और बहुत करना भक्तों का काम है। और बहुत जानना और थोड़ा करना विद्वानों और ज्ञानियों का काम है।

सद्व्यवहार और दुर्व्यवहार का दूसरे पर प्रभाव और मनुष्य के व्यवहार से अपने आप को फल

मनुष्य के व्यवहार से तीन प्रकार का प्रभाव दूसरे पर पड़ता है। इसके दुर्व्यवहार से दूसरे पर इस प्रकार का प्रभाव पड़ता है—प्रथम या तो वह क्रुद्ध हो जाएगा। द्वितीय—या रुष्ट हो जाएगा। तृतीय—या असन्तुष्ट हो जाएगा।

सद्व्यवहार से दूसरे पर प्रभाव—प्रथम तो वह प्रसन्न हो जाएगा, द्वितीय प्रेमी बन जाएगा, तृतीय उसका विश्वास जम जाएगा।

दुर्व्यवहार का फल—क्रुद्ध होने से दण्ड, बदला, शाप या घृणा के भाव उत्पन्न होंगे, अपने—अपने सम्बन्ध के अनुसार। यदि तमोगुणी होगा, तो बदला लेगा। रजोगुणी होगा, तो शाप देगा, यदि सतोगुणी होगा, तो घृणा या उपेक्षा—वृत्ति कर लेगा।

सद्व्यवहार का फल—प्रसन्न होगा तो प्रशंसा करता रहेगा। प्रेमी बन जाएगा तो सुख—दुःख का साथी, नेकी—बदी (भलाई—बुराई) में हितैषी मित्र बन जाएगा। और विश्वासी हो जाएगा तो बहुत कुछ प्राप्त करेगा।

गुरु, माता—पिता, बुजुर्गों के क्रुद्ध होने से शक्ति का ह्रास और रुष्ट होने से शक्ति या तेज, ज्ञान की अप्राप्ति,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्तुष्ट होने से सुमार्ग में रुकावट और संशयात्मक बुद्धि बन जावेगी।

विनश्वर पदार्थ सार्थक परिश्रम
विनश्वर अर्थ सार्थक जीवन

प्रश्न—जब यह कहा जाता है और देखा भी जाता है—कि धन, माल, सम्पत्ति, पुत्र—परिवार, किसी का अपना नहीं और शरीर तक भी आखिर छूट जाता है—तो फिर मनुष्य का अपना क्या हुआ? क्या सब यह व्यर्थ परिश्रम करते हैं?

उत्तर—नहीं, व्यर्थ परिश्रम नहीं। यह सब कुछ प्राप्त धन, ऐश्वर्य और शरीर नाशवान् है—रहेगा नहीं। अपना तो मनुष्य का है यश और अपयश। इन्हीं विनश्वर पदार्थों से ही बल प्राप्त होता है। इसी बल के आधार पर मनुष्य चाहे यश कमा ले, या अपयश साथ ले जाए। इसीलिए मनुष्य जीवन का परम फल यशोलाभ ही है और इसी में मनुष्य की सार्थकता है। यदि यह पदार्थ प्राप्त न हों, तो बल नहीं मिलता और बल न होने से मनुष्य कुछ भी परोपकार, सेवा नहीं कर सकता। इसलिए इन विनश्वर पदार्थों की प्राप्ति के लिए परिश्रम आवश्यक बन जाता है।

तन, मन, धन के यज्ञ

तन से सेवा, धन से दान, मन से नमस्कार—नमः, यह तन, मन, धन के यज्ञ हैं।

भक्त के योगक्षेम—वाहक प्रभु क्यों?

नन्हा बच्चा जैसे माता को ही अपना समझता है, उसी में उसका मम और अहम् प्रविष्ट रहता है, पिता की सम्पत्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वह अनभिज्ञ–सा रहता है, इसी तरह जब भक्त ऐश्वर्य में–परिवार में रहता हुआ भी उन से बच्चे की नाईं अनभिज्ञ बुद्धि से रहता है, और अपना सब मम अहम् प्रभु में ही रखता है–तब प्रभु का भी मम–अहम् इसी में अपना बन जाता है। इस लिए उसके **योगक्षेम** का वह जिम्मेदार (उत्तरदायी) रहता है।

स्वतन्त्रता और निर्भयता

हर मनुष्य स्वतन्त्रता चाहता है, मनुष्य ही नहीं अपितु प्रत्येक जीव भी, पर अधिकारी केवल मनुष्य ही है। परतन्त्र मनुष्य तो केवल आकार या योनि से मनुष्य है, अन्यथा वह तो पशुओं में प्रधान पशु है। स्वतन्त्रता से निर्भयता मिलती है।

निर्भयता तीन प्रकार की होती है–एक तामसिक, दूसरी राजसिक, तीसरी सात्विक।

तामसिक निर्भयता–धन, जन, शरीर, विद्या के बल के अभिमान से जो निर्भय होकर कहता है कि "अमुक मेरा बिगाड़ क्या सकता है, आये, मैं मज़ा चखाऊं।" यह है तो निर्भयता पर नाशवान् पदार्थों के बल पर कहता है। यह निर्भयता एक ढिठाई है–तामसिक है–हानिकारक।

राजसिक निर्भयता–जो सत्य के बल पर कहता है कि मुझे किसी का क्या डर है, मैं सत्य–सत्य कहूंगा या कह रहा हूं। ऐसा कहने वाला कठोर सत्य कहता है, यह राजसिक है।

सात्विक निर्भयता–जो निर्वैर है–किसी से वैर नहीं,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब से प्रेम है। यहां कहने की भी आवश्यकता नहीं रहती है। यह है असल और सच्ची निर्भयता, यही है स्वतन्त्रता, पवित्रता, प्रेम में एकता। निरभिमानता निर्दोष होती है। आत्म–दर्शन, आत्माग्नि जगे बिना स्वतन्त्रता, निराभिमानिता कहां हो? यदि कोई मनुष्य निर्भय–स्वतन्त्र होना चाहे, आत्म–दर्शन का अभिलाषी हो, तो उसे द्वेष, अहंकार और स्वार्थ त्याग करना आवश्यक है। इनमें से कोई एक भी जब तक रहेगा–आत्म–दर्शन और निर्भयता प्राप्त न होगी।

प्रभु–भक्ति, योग, यज्ञ से अन्तःकरण शुद्धि

परमेश्वर की भक्ति, योग, यज्ञ से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। यह अमोघ हथियार है। जो उपासक अहंकार द्वेष और स्वार्थग्रस्त हैं–उनकी भक्ति, यज्ञ और योग निष्फल जाते हैं। जब लोग ऐसा सुनते हैं कि अहंकारी, द्वेषी और स्वार्थी मनुष्य इस मार्ग पर नहीं चल सकते तो वे घबरा कर निराश हो जाते हैं, इस मार्ग के पथिक नहीं बनना चाहते। यह उनकी भूल है। हथियार ही शत्रु की काट–छांट कर सकता है–शर्त यह है कि अन्दर से सच्ची चाह हो, इच्छा हो कि मेरे मल, दोष, विक्षेप और आवरण दूर हों। तो यह साधन, पहला काम यही करते हैं कि मल, दोष को दूर भगाएं। जिन उपासकों के बहुत जप, तप, योग, यज्ञ आदि करने पर भी अन्तःकरण पवित्र नहीं होता–उनका कारण केवल यही होता है कि वे सच्ची चाह अपने दोषों को दूर करने की नहीं रखते, ऊपरले दिल से इच्छा करते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको वे दोष लाभदायक प्रतीत होते हैं, विष–जहर शत्रु समान प्रतीत नहीं होते। इन हथियारों के अतिरिक्त दोषों को दूर करने का कोई उपाय ही और नहीं है। १७–१२–४८

जिसके लिए हम, हमारे लिए वह

मनुष्य का शरीर जिसके लिए होता है वही इसके सुख–दुःख में सुखी–दुखी होता है और उसके सुख–दुःख की देख–रेख रखता है। उदाहरणतः जब किसी का शरीर अपने कुटुम्ब के लिए है तो उसके सुख–दुःख में कुटुम्ब ही काम करता है। जब वह जाति के लिए हो तो जाति और देश इसको संभाल लेते हैं और शरीर जब प्रभु के अर्पण हो, प्रभु के लिए हो, तो प्रभु स्वयं अपनी विचित्र शक्ति से इसके हानि लाभ के जिम्मेदार रहते हैं। चाहे वह किसी को चेतन प्रेरणा से करें, चाहे जड़ को प्रेरित करें, चाहे जागृत में साधन बनावें, चाहे स्वप्न में, चाहे अनजाने काम करावें, चाहे जाने हुए ज्ञात रूप में। ५–२–४८

भक्ति के तीन प्रकार और प्रत्येक प्रकार के तीन चिन्ह

भक्ति के तीन प्रकार–१. भौतिक भक्ति–इसका चिह्न है नमस्कार। २. आधिदैविक भक्ति–इसका चिह्न है प्रेम। ३. आध्यात्मिक भक्ति–इसका चिह्न है आन्तरिक एकाग्रता, अपने नमस्करणीय, सेव्य, पूजनीय या उपास्य देव के प्रति नमस्कार। यह तीन प्रकार की है भक्ति के भाव से।

१. व्यावहारिक वृत्ति या दृष्टि वालों का नमस्कार–मर्यादा या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्टाचार–मात्र होता है, आए नमस्कार कर दी या कह दी।

२. बौद्धिक वृत्ति या दृष्टि वालों का नमस्कार–आए और कुछ साथ भी लाए और नतमस्तक होकर चरण स्पर्श करके बैठ गए। यह होती है आदर–अर्थ, कि अपने पूज्य प्रभु से प्रसन्न हो जावें और मेरी श्रद्धा–भक्ति की प्रशंसा हो।

३. मानसिक वृत्ति या आत्म दृष्टि वालों का नमस्कार–यह भक्ति–भाव से अपने ही आत्म–कल्याणार्थ दर्शन स्पर्शन करते और सब कुछ भूल कर सब इन्द्रियों को मन से एकाग्र कर अपने उपास्य देव या पूजनीय देव में एक तार होकर बैठते हैं।

प्रेम–ऐसे ही प्रेम भी तीन प्रकार का होता है–

१. भौतिक प्रेम–यह स्वार्थ अर्थ होता है।

२. दैवी प्रेम–आदर और सम्मान अर्थ होता है।

३. आध्यात्मिक प्रेम–यह स्वार्थ और अहंकार रहित होता है।

एकाग्रता–यह भी तीन प्रकार की होती है–

तामसिक–यह दूसरे को हानि पहुंचाने के लिए होती है।

राजसिक–यह देश जाति के परोपकार अर्थ होती है।

सात्विक–यह आत्म कल्याण अर्थ होती है।

दो प्रकार के पुरुष

आसक्त पुरुष–१. जो पुरुष फल की लालसा से कार्य करता है। यह अधम पुरुष है उसे फल न मिलने या कम मिलने से दुःख होता है।

२. जो फल की लालसा का त्याग तो करता है, परन्तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म में लिप्त रहता है वह मध्यम पुरुष है और उसे मोह घेरे रहता है।

निरासक्त पुरुष—जो कर्म और फल दोनों में लालसा छोड़ देता है। कर्म को प्रभु की प्रेरणा से या जनता की प्रेरणा जान कर करता है। जितना जिस समय कराने वालों से प्राप्त हो जाता है, करा देता है। उसे कोई भी दुःख या हर्ष नहीं होता, सदा ही एक रस बना रहता है।

कर्म, भक्ति और ज्ञान में रुचि की निशानी

१. जो लोग तार्किक हैं, दूसरों के दोष देखने में दिलचस्पी रखते हैं—उनका ज्ञान—मार्ग होता है।

२. जो बिना समझाए दूसरों का दुःख अनुभव करते हैं—उनका मार्ग—भक्ति मार्ग है।

३. जो देखने मात्र से अच्छे कामों की नकल करने लग जाते हैं, उनमें वैसा करने की इच्छा तीव्र हो जाती है—वे कर्ममार्गी होते हैं।

इन तीनों में भक्ति मार्ग कठिन है। कर्म का मार्ग त्यागी कर सकता है। भक्ति का मार्ग कर्म के पूर्ण होने पर मिलता है। प्रभु भक्त वही बन सकता है—जिसने माता, पिता, गुरु की भक्ति की हो। जिसमें इन में से—अर्थात् जीते—प्रकट (साक्षात्) माता—पिता और गुरु के प्रति भक्ति, श्रद्धा और त्याग नहीं—वह कभी भी प्रभुभक्त नहीं बन सकता। जिन में यह गुण न हों—समझना चाहिए, कि उनका कर्म मार्ग पूर्ण नहीं हो चुका। कर्म की, छोटे परोपकार से लेकर, जाति और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की भक्ति में पूर्णता होती है। भक्ति में अपनापन अर्पण करना होता है। किसी भी अन्य प्राणी की सेवा करने में धन और तन अर्पण होता है, जाति, देश के लिए धन, तन और प्राण अर्पण होता है, माता–पिता में पूर्ण भक्ति का स्वरूप–धन, तन के अतिरिक्त मन अर्पण होता है, गुरु के प्रति अहंकार अर्पण होता है–यह गुरु–भक्ति होती है। फिर प्रभु के अर्पण आत्मा हो सकती है–पहले नहीं हो सकती। यही कारण है–कि भक्त कोई विरला पैदा होता है। जितना–जितना किसी का मार्ग पूरा होता रहता है–उतना–उतना ही वह भक्ति में प्रवेश करता है। जो भी सेवा, परोपकार, दान, पुण्य और त्याग, प्राणिमात्र या जाति सेवा देश तक के लिए की जाती है, वह सब कर्म यज्ञ है। माता–पिता और गुरु के प्रति जो सेवा और त्याग किया जाता है, वह कर्म यज्ञ नहीं, वह भक्ति–यज्ञ है। जितनी ज्ञान में उन्नति होती है, उतनी कर्म में, जितनी कर्म में उन्नति होती है, उतना भक्ति में प्रवेश होता है।

भक्ति और ज्ञान की सापेक्षता

परमात्मा की प्राप्ति (दर्शन) का साधन है–भक्ति, और पहचान का साधन है–ज्ञान। ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरु की समीपता आवश्यक है। इसके लिए पहले बुद्धि में समझ आए कि क्यों आवश्यकता है? फिर समझ आने पर मन में चाह उत्पन्न हो। चाह उत्पन्न होने पर, वह परिश्रम, उसके पास पहुंचने का करे–यह है कर्म। जब समीप हो जाए–तो फिर प्रार्थना करे–ज्ञान उपार्जन के लिए, यह है भक्ति। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना से जो गुरु देवे–वह होगा–ज्ञान। यह ज्ञान भी तब तक पल्ले नहीं पड़ेगा जब तक गुरु की ज़बान में शिष्य का कान–श्रवण, मन में प्रेम, बुद्धि और जीवात्मा स्पर्श–चारों संगठित होकर अर्पण न हों, एक की भी कमी से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी। बस, यही कारण है–हमारी भक्ति पूजा से, ज्ञानप्राप्त न हो सकने का। चारों एक साथ अर्पण नहीं हुए।

श्रद्धा, भक्ति, प्रेम की एकता

प्रेम–भक्ति–श्रद्धा

प्रश्न–श्रद्धा, भक्ति, प्रेम एक वस्तु है या भिन्न–भिन्न?

उत्तर–तीनों एक ही हैं–भक्ति की मंजिलें हैं।

नींव श्रद्धा–दीवारें भक्ति–छत प्रेम है।

श्रद्धा ज्ञान सहित स्वार्थ रहित, भक्ति नम्रता सहित और दम्भरहित, प्रेम अहंकार रहित और एकता हो तो पूरा (मुकम्मल) महल है–अन्यथा सब व्यावहारिक या लोक मर्यादा में गिनी जाती हैं।

बाह्य क्रिया का अन्दर समाना, अन्दर क्रिया का बाहर लाना

साधक के लिए जो बाहर करते हो–वह अन्दर आ जावे और जो अन्दर करते हो–वह बाहर प्रकट हो जावे–तो साधन सफल है। उदाहरणतया–अग्निहोत्र करते हो–तो अन्दर प्रवेश हो जावे, ध्यान करते हो–तो वही ध्यान बाहर प्रकट हो–ऐसा जीवन बन जावे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के शिक्षा विषय

स्कूल कालिजों में जैसे विद्यार्थियों के विद्या विषय (मजमून) होते हैं–उनकी परीक्षा होती है और हर विषय के पर्चे एक या दो–दो, तीन, तीन भी होते हैं और हर पर्चे में कई कई प्रश्न होते हैं। कई मौखिक, कई लिखित। कई क्रियात्मक भी होते हैं। ऐसे ही मनुष्य जीवन शिक्षा–परीक्षा–दीक्षा का है। इसकी शिक्षा के तीन विषय हैं १. कर्म, २. उपासना, ३. ज्ञान। इनके एक–एक विषय के भाग हैं–आवश्यक (लाजमी) और ऐच्छिक (इख्तियारी) १. उपासना के दो पर्चे सन्ध्या (ध्यान) और जप दोनों आवश्यक हैं। २. ज्ञान के दो पर्चे व्यावहारिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान हैं। इनमें से व्यावहारिक ज्ञान ऐच्छिक और आध्यात्मिक ज्ञान आवश्यक है। ३. कर्म में नित्य और नैमित्तिक कर्म–दो पर्चे हैं। नित्य कर्म आवश्यक है और नैमित्तिक ऐच्छिक है।

(अ) नित्य कर्म–व्यक्तिगत जीवन के लिए है। इसके पांच प्रश्न या भाग हैं–सदाचार, सत्य (सच्चाई की खोज और आचरण) इन्द्रियों और मन का वश में रखना, स्वास्थ्य की रक्षा करना, पंच–महायज्ञ करना।

(आ) पारिवारिक जीवन में–सन्तान की रक्षा करना और उसे उन्नत करना।

(ब) सामाजिक जीवन–इसकी क्रियात्मक परीक्षा होती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नम्रता और त्याग की महिमा

लकड़ी का एक मोटा शहतीर है—इसके अन्दर भंवरा दाखिल हो जाता है छिद्र करके। जिस भाग से वह छिद्र करता है—वह अत्यन्त सूक्ष्म है। सुनार सोना—चांदी—तांबे में, लोहार लोहे के बड़े—बड़े ढेलों में छिद्र करता है—तो लोहे के पतले बर्मे से। किसी के अन्दर प्रविष्ट होना हो तो अत्यन्त छोटा बन कर, विनीत स्वभाव और नम्र बन कर प्रविष्ट हो सकता है। किसी को वश में करना हो तो महान् बन कर, कर सकता है। प्रभुदेव प्रकृति से भी सूक्ष्म हैं—तो प्रकृति के भी अन्दर विद्यमान हैं। जीव से भी सूक्ष्म हैं—तो जीव के अन्दर **असंख्यात सृष्टि** और **असंख्यात जीव** हैं। सब जड़ और चेतन के अन्दर रोम—रोम में व्यापक हैं। वे बाल की नोक और रोमाञ्च से भी सूक्ष्म हैं, और अपनी माहनता से समस्त संसार—जड़—चेतन को अपने अन्दर वश में किये हुए हैं। वही मनुष्य दूसरे के मन में प्रवेश कर सकता है, जिसने अपने को उससे भी छोटा बना लिया हो। वही मनुष्य सबको अपने अन्दर अपने वश में कर सकता है—जिसका दान महान् और त्याग महान् होगा। जिसके लिए दान करेगा, जिसके लिए त्याग करेगा, उसे वह अपने अन्दर अपने वश में करेगा। नन्हा बच्चा अपने नन्हेंपन के कारण अपने मां—बाप के हृदय में बसा रहता है और मां—बाप अपने महान् त्याग, महान् दान से बच्चे को अपने वश में किये होते हैं कि बच्चा माता की अनुपस्थिति को एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव जीवन और इस लोक–परलोक का सुख (रूपक द्वारा)

एक भटकते यात्री को सुरक्षित होने और आराम पाने के लिए सरकार ने भूमि और सामान दे दिया। अब यदि वह साधन को पाकर ऐसे रख दे–तो आराम नहीं पा सकेगा, न सुरक्षित होगा, सामान भी नष्ट हो जाएगा। यदि वह पुरुषार्थ करके गर्मी में धूप और सर्दी में ठंड से बचाव के लिए चारदीवारी बना देता है और अन्दर आने जाने के लिए दरवाजा, वर्षा से बचाव के लिए छत और हवा और रोशनी के लिए खिड़कियां बना देता है–तो खूब आनन्द भोगता है और इन शत्रुओं (सर्दी–गर्मी) से बच जाता है। यह है इस लोक का सुख। यदि वह चाहे कि मैं गर्म रात्रि में ऊपर खुली हवा में आनन्द लूं और सर्दी में खुली धूप की मौज करूं, तो अब उसे आवश्यकता पड़ेगी ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ियों की। बिना सीढ़ियों के वह छत रखते हुए भी नहीं चढ़ सकता। बस यही हाल है मानव जीवन का। इस लोक और परलोक के सुख के लिए यह मानव शरीर एक सफेद ज़मीन है, जो प्रभु कृपा से मिली है। इन्द्रियां इसका सामान हैं। बुद्धि, मन, वाणी, हाथ इसकी चारदीवारी हैं। मोक्ष इसकी छत है। काम आने–जाने का द्वार है। धर्म और अर्थ इसकी खिड़कियां हैं। यदि आत्मा इस लोक से ऊपर, छत से ऊपर जाना चाहती है तो इसकी सीढ़ियां आठ हैं। जहां आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतन्त्रता से आराम कर सकती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन सीढ़ियों के बिना वह ऊपर छत पर चढ़ ही नहीं सकता। ३–४–५३

किसका बल क्या है?

प्रत्येक का अपना–अपना गुण –स्वभाव ही बल है। परमेश्वर का बल क्या है?

दया, सत्य और न्याय उसके बल हैं।

ऐसे ही मनुष्य का अपना–अपना स्वभाव और गुण उसके बल और अबल हैं।

उद्देश्य का सच्चा रूप

जो मनुष्य अपने जीवनोद्देश्य के लिए किसी को अपना आदर्श समझता है और अपने आदर्श व्यक्ति के समीप होने पर भी उसके संग में पुजारी रूप में नहीं रहता–तो समझो उसका आदर्श सच्चे हृदय से नहीं है, भावमात्र से है, या उसका उद्देश्य सच्चे नहीं है, सुना, पढ़ा हुआ क्षुद्रमात्र है।

प्रेम के प्रकार

प्रेम तीन प्रकार का होता है–एक क्षुद्र, दूसरा शुद्ध और तीसरा विशुद्ध।

१. स्वार्थ (शरीर) के सम्बन्ध से जो प्रेम होता है वह क्षुद्र कहलाता है।

२. स्वार्थरहित (आत्म–कल्याणर्थ) जो प्रेम होता है वह शुद्ध कहलाता है।

निम्न प्रकृति से पैदा हुआ प्रेम विषयों के कारण से होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. स्त्री से जो पुरुष का प्रेम होता है—वह काम वश है।

२. माता—पिता का सन्तान से जो प्रेम है वह मोह वश है।

३. मित्र रिश्तेदारों से जो प्रेम है वह क्रोध वश है।

४. धन या धन के साधनों, ग्राहक क्रय—विक्रय से जो प्रेम है वह लोभ वश है।

५. महल माड़ी गाड़ी आदि से या अन्य लोगों से जो प्रेम है वह अहंकार वश है।

ये सब प्रेम शरीर (स्थूल या सूक्ष्म) से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे शरीर नाशवान है और अपनी अवस्थाएं बदलता रहता है—बचपन, जवानी, अधेड़ और बुढ़ापा, परन्तु दुःख सुख आदि से इन प्रेमों में भी (कमी—बेशी) न्यूनाधिक्य और परिवर्तन होता रहता है।

शुद्ध प्रेम—यह आत्म कल्याण के लिए होता है। शुद्ध प्रेम अर्थात् स्वार्थ रहित, यह प्रेम गुरु से होता है, परन्तु यह विशुद्ध नहीं होता।

विशुद्ध प्रेम—यह प्रेम केवल परमात्मा से ही होता है, जो अहंकार रहित होता है और स्वभाव रूप से हो जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि जिन—जिन से क्षुद्र प्रेम किया जावे वह सभी क्षुद्र हो और शुद्ध प्रेम अवश्य ही शुद्ध हो।

अपितु ऐसा भी हो सकता है जहां शरीर सम्बन्धी प्रेम विषय रहित हो, वह शुद्ध होगा जैसे मैत्रेयी याज्ञवल्क्य की स्त्री थी, परन्तु उनका प्रेम काम विषय से नहीं था, काम रहित था। वह सच्चा प्रेम आत्म कल्याणार्थ ही था और शिष्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का गुरु से या गुरु का शिष्य से भी क्षुद्र प्रेम हो सकता है, जब कि गुरु को शिष्य से शरीर सुख के लिए उद्देश्य हो या शिष्य को गुरु की सम्पत्ति का लोभ हो।

प्रेम के भिन्न–भिन्न रूपों में अहंकार की दशा

प्रेम में अहंकार तो नहीं रहता–पर इसके भी कई प्रकार हैं। जब स्वार्थता से प्रेम होगा–तब अहंकार दबा रहेगा। जब मोह ममता से प्रेम होगा तो बड़े का अहंकार छोटे में एक हो जाएगा–उस समय के लिए। जब पवित्रता के लिए प्रेम होता है–तब छोटे का अहंकार बड़े में अर्पित हो जाता है।

किसी भी कामना से किया गया प्रेम, भय और लज्जा से रहित न होगा, पर जहां केवल पवित्रता, एकता को धारण करने के लिए, प्रेम होगा, वहां किसी प्रकार की, किसी से भी, किसी काल में भी–भय और लज्जा का भाव तक भी पैदा न होगा। हर समय वह प्रेम पवित्र, एक रूप धारण किये रहेगा। जैसे समझ लो कि जिसे भगवान् में सच्चा प्रेम है–चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, उसे किसी के सामने, किसी समय में भगवत्प्रेम करने में भय, लज्जा न आएगी। संसार के अत्यन्त पवित्र महापुरुषों में जो किसी नर–नारी का प्रेम होता है, वह भी बेखौफी (निडरता) और लज्जा रहित होता है, पर जब मनुष्य अपनी स्त्री से प्रेम करता है यद्यपि वे एक होते हैं तब भी उनको दूसरों के सामने लज्जा आती है। जहां हर प्रकार की निडरता होगी–वही प्रेम सच्चा होगा–पवित्र, कामना रहित होगा। ५–१०–४२

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आध्यात्मिक भूख

प्रभु के लिए भूख और जरूरत कब पैदा हो? जब मनुष्य अपने को निःसहाय और परिमित समझता है। नन्हा बच्चा दोनों मुट्ठियां बन्द किये और पांव–टांगें ऊपर उठाए, सुकोड़े चीख–पुकार कर रहा होता है, जैसे कुत्ता अपने मालिक को देखकर सीधा लेट जाता, मालिक की ओर देखता, टांगें ऊपर को सिकोड़ अपना पेट दिखाता है, अपनी निस्सहायता का वर्णन करता है, तब मालिक और मां दया से द्रवित होकर उसे झट प्यार करने लगते हैं। जब तक कोई मनुष्य अपने को निस्सहाय और परिमित अनुभव नहीं करता तब तक तो भगवान् से प्रीति कर ही नहीं सकता। यद्यपि प्रत्येक जीव निस्सहाय और परिमित है तथापि आलस्य, प्रमाद और अभिमान के कारण अनुभव नहीं करता।

१. सत्य से प्यार किसी विरले का होता है। सत्य की खोज, सत्य की प्राप्ति की चाह–लगन सब में नहीं हो सकती। उपदेश सुनने, सुनाने और कथा कीर्तन करने, यज्ञ, दान, सेवा से भी नहीं मिलती। जिसमें धन की चाह है, हिरस है।

२. सत्य के लिए तप नींव है। धन की चाह–मान और सुख के लिए है।

३. वह तप कैसे कर सकेगा जिस सत्य की खोज में तो नहीं पर सत्य कार्यों–शुभ कार्यों में प्रवृत्ति है? वह पाप अवश्य कर बैठेगा, व्यवहार में पवित्र न रहेगा, या विचार शुद्ध नहीं होंगे–खोटापन अवश्य रहेगा। २५–२–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरने वाला वरा गया

एक स्त्री ने एक मनुष्य को वर लिया। जब पुरुष ने स्वीकार कर लिया तो इसका यह अर्थ हुआ कि पुरुष ने भी इस स्त्री को वर लिया। ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति अनन्त देव प्रभु को वर लेता है—मानो वह अनन्त देव से वर लिया गया है।

एक दूसरे की सम्पत्ति पर अधिकार

जैसे स्त्री अपने वरे पति की सम्पत्ति को जैसे चाहे प्रयोग करे। चाहे अपने ही लिए उसका लाभ उठाए, चाहे तो उस के सारे परिवार को बांट दे—लाभ दे। ऐसे ही प्रभु के स्वीकृत भक्त को सिद्धि तुरन्त प्राप्त हो जाती है। वह भी चाहे तो उसे अपने लिए चमत्कार रूप बनाए या समस्त संसार को इस सिद्धि से लाभकारी बनाए।

मनुष्य से देवता नमन से, पुरुष से परमेश्वर समर्पण से

मनुष्य और देवताओं के उपकार में क्या भेद है?

मनुष्य जो उपकार करता है—वह उन पदार्थों से करता है—जो पशुओं मनुष्यों और देवताओं से लेता है। उसकी निज की कोई वस्तु नहीं जिस से उपकार कर सके। हां, एक नमस्कार इसकी अपनी वस्तु है, जो उसने किसी से नहीं ली।

देवता और परमेश्वर के उपकार में क्या भेद है? देवता जो कुछ देते हैं—उनका कुछ भी अपना नहीं, वे प्रभु से लिया हुआ देते हैं और प्रभु अपना ही देते हैं। मनुष्य जो बनना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहे बन सकता है—पशु देवता या परमेश्वर। परमेश्वर बनने का अर्थ अर्पण होकर छोटे से बड़ा बन जाना है।

प्रभु से सच्ची प्रीति

माता को बच्चे में प्रीति है। न केवल इसे देखने में प्रीति है—अपितु इसे खिलाने में, पिलाने में, सुलाने में, जगाने में, पाखाना—पेशाब कराने में, कपड़े पहनाने में और नहलाने में भी प्रीति ही प्रीति है। ऐसे भक्त को यदि भगवान् में प्रीति है—तो भगवान् के प्रत्येक कार्य में प्रीति हो। जहां भी भगवान् का कार्य दृष्टि में आये गद्‌गद् हो जाए। जहां भगवान् का नाम लिया जा रहा हो, गद्‌गद् हो जाए, स्वयं करे या दूसरा। जब तक मनुष्य को किसी भी विषय में प्रीति होगी—तब तक परमेश्वर से प्रीति में कमी रहेगी। यद्यपि आगे पीछे उसे परमेश्वर सब से अच्छा लगेगा—पर आसक्ति विषय के समय, विषय ही परमेश्वर से अच्छा लगेगा।

प्रभु—प्रीति बिना साधन—रुचि निष्फल

भगवान् में तो प्रीति नहीं—पर साधन में (योग में या यज्ञ में) लगन है, प्रीति है—तो समझना चाहिए कि वह—साधन में लगन, प्राणमय कोष से उत्पन्न हुई है। वह एक शौक है या शुगल (मनोरंजन) है, या प्रतिष्ठा—मान का मोह है। यह साधन भी थका देने वाले सिद्ध होंगे अनथक नहीं। हां! जो मन से उपजे, साध्य में प्रीति मन से हो तो थकावट के स्थान पर उत्साह और प्रसन्नता बढ़ती है। साधन एक खेल—सा मालूम होता है। साध्य में प्रीति होने से साधन अन्तःकरण को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पवित्र करता जाता है और साध्य में प्रीति न होने से साधन अन्तःकरण को शुद्ध नहीं कर सकता—अपितु अहंकार और राग—द्वेष उत्पन्न करता है। साध्यानुकूल साधन होने से सफलता शीघ्र होती है अन्यथा सफलता के निकट पहुंच कर गिरावट या रुकावट आ जाती है।

आश्चर्य

जो वस्तु प्राप्त, सुगम, सुलभ है वह तो मनुष्य को अज्ञान से अप्राप्त, दुर्गम और दुर्लभ प्रतीत होती है। उसकी चाह नहीं करता और जो सचमुच अप्राप्त दुर्गम, कष्ट साध्य है वह उसे अज्ञान से सुगम प्राप्त होने वाली सुखदायक मालूम होती है। यही अज्ञान है। पहली वस्तु परमात्मा है, दूसरी माया।

संसार क्या है?

जीव की कमियों को पूरा करने का साधन।

"जो तुझ भावे सो भली कार" का अनोखा स्वरूप

जिस की शरण में मनुष्य जाना चाहता है, या उसकी समीपता में रहना चाहता है—उसे तभी भावेगा—जब उसके काम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा। यदि उसके काम करने से कतराएगा, या उलटे करेगा तो कभी उसे न भावेगा, उसके प्रेम प्यार का पात्र न बनेगा चाहे नौकर हो, स्त्री हो, पुत्र हो, शिष्य हो या मित्र हो। इसलिए प्रभुदेव की शरण में, या समीप में रहने का इच्छुक भक्त यदि प्रभु के काम करेगा, प्रभु को भावेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु में कोई विकार नहीं। यदि भक्त कोई भी विकार अपने अन्दर रखेगा, तो प्रभु को पूर्ण रूप से नहीं भावेगा। यदि विकार बुराई तो नहीं रखता परन्तु प्रभु के काम नहीं करता तो भी प्रभु को नहीं भावेगा, इसके प्रेम का पात्र न बन सकेगा।

प्रभु में सच्ची प्रीति, प्रभु की सच्ची पूजा वही कर सकता है जिसे जन्म–मरण महान् दुःख प्रतीत होता है। दुःखी मनुष्य ही अपने दुःख निवृत्ति के लिए सहायता चाहता है या शरण पकड़ता है। जब तक कोई मनुष्य दुःख या कमी को महसूस नहीं करता उससे उसे व्याकुलता नहीं होती, तब तक वह सहारा नहीं ढूंढ़ता। जिन लोगों को जन्म–मरण का बन्धन दुःख प्रतीत नहीं होता वे यदि प्रभु से प्रेम या प्रभु की पूजा करते देखे जाते हैं, तो वे किसी स्वार्थवश करते मानने चाहिएं चाहे उन्हें अच्छे धर्मात्मा कहलाने का यश और नेकनाम या बड़ा समझे जाने का शौक है! चाहे धन, मान की चाह है! वे सच्चे पुजारी नहीं हो सकते। २०–६–४६

शरीर उपासना में–मन विषयों में

जब तक मनुष्य को हानि का ज्ञान नहीं–विषय उसे शत्रु नजर नहीं आते। जब शत्रु नहीं, तो उनसे वैर–विरोध ग्लानि कैसे होगी? इसलिए जो मनुष्य प्रभु उपासना में बैठता है–और मन विषयों में निकल जाता है तो ऐसा होता ही रहेगा, प्रभु में न लगेगा, क्योंकि जिन विषयों में इसकी प्रीति है उन में मन ने जाना है। जब मन को विषयों की हानि का ज्ञान हो जावे, और घृणा करने लगे, तब भूल कर भी उनमें

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी रुचि न होगी, न विषय सामने आवेंगे। विषय मन को चाहते हैं, मन विषयों को चाहता है, दोनों एक–दूसरे का चाह से स्वागत करते हैं। जब मन चाहेगा नहीं, तो विषय आवेंगे कैसे? उन की चाह भी समाप्त हो जावेगी। दोनों में आकर्षण परस्पर का होता है।

त्याग प्रेम अनुसार

मनुष्य का स्वभाव है कि वह जिसे अपना समझता है, उससे ही प्रेम करता है। जितना–जितना जिसे अपना समझता है उतना–उतना ही उससे प्रेम करता है। उस के लिए त्याग भी उतना ही करता है, जैसे माता–पिता, पुत्र, स्त्री, बहन, मामा, चाचा, मित्र, सम्बन्धी के प्रेम में अन्तर होता है, क्योंकि जितना मनुष्य में अपनापन समझता है, उतना ही उनसे प्रेम करता है। किसी के बिना तो सालों गुजर जाते हैं–तो याद नहीं आती, प्रेम नहीं कर पाता और किसी के बिना रह ही नहीं सकता। जिस में नित्य का प्रेम है, उसी को नित्य अपना प्रेम अथवा द्रव्य अन्नादि दिया करता है। परमेश्वर से मनुष्य का प्रेम इन उपरोक्त रिश्तेदारों के बराबर भी नहीं–क्योंकि परमेश्वर को अपना समझता नहीं। जिस मनुष्य ने परमेश्वर को जितना और जितना अपना समझा उतना उससे प्रेम वह करता है। जिस ने उसे सर्वस्व ही अपना समझ लिया–तो अपना सर्वस्व ही उसी के लिए त्यागता है–और रोम–रोम से उसे प्रेम करता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान श्रद्धाअनुसार, श्रद्धा विश्वास अनुसार

जितना मनुष्य को अपने गुरु, आचार्य, परमेश्वर, वेद वाक्य में सत्यता का विश्वास है, उतनी ही उसमें इसकी श्रद्धा होती है। जितनी श्रद्धा होती है उतना ही वह उसे अपने मन में मान देता है। और जितना मान देता है उतना वह स्वयं अपनाता और मान पाता है।

सर्वव्यापक परमात्मा का अनुभव कैसे होगा

कितना आश्चर्य है कि मनुष्य के शरीर में पांच तत्त्वों आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी का अत्यन्त साधारण–सा अल्पमात्र अंश है, पर जब जरा आग स्पर्श करे तो तुरन्त शरीर पर प्रभाव पड़ता है। जल की बून्द शरीर पर पड़े तो तुरन्त शीतलता अनुभव होती है, परन्तु परमात्मा पूर्ण रूप से रोम–रोम में व्यापक है–इसका अनुभव नहीं होता। विचारणीय बात यही है कि कौन–सा कारण है कि परमात्मा का अनुभव नहीं होता? कारण यह है कि मनुष्य आत्मा से पूजन नहीं करता, जब भी पूजन करता है–वह अहंकार के आश्रय करता है और अहंकार समर्पित नहीं होता–अहंकार स्थिर रहता है। जैसे नाटक, सिनेमा में पात्र अपना पार्ट अदा करते हैं–इस पार्ट के बाद वे वैसे के वैसे हो जाते हैं–जैसे व्यक्तित्व के वे थे। उदाहरणतया सिनेमा में राम का पार्ट अदा किया–तो उस घण्टा तक तो वह राम बन कर काम करता है बाद में वह वही ही दिखाई देता है। ऐसे ही मनुष्य पूजा करने के बाद वही ही रहता है जो वह था। झूठ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मक्कारी, सभी अश्लील काम करता है इसको प्रभु का भान इसलिए नहीं हो सकता। और पूजा प्राण के बल पर करता है। प्राण जैसे आता जाता रहता है उसे स्वयं की सुधि नहीं रहती–ऐसे ही मनुष्य भी।

अन्तःकरण सिंहासन, इस पर भगवान् का आसन, कब?

मनुष्य का अन्तःकरण ऐसी अद्‌भुत मसनद (आसन) है–जिस पर कोई न कोई बैठना ही चाहता है–खाली नहीं रहता। जिस प्रकार की यह मसनद (अन्तःकरण) सजाई जाती है, वैसा ही बैठने वाला तुरन्त पहुंच जाता है। जो इस पर बैठ जावे, उस क्षण उसी का ही राज सारी इन्द्रियों और शरीर पर हो जाता है। इस मसनद की किसको इच्छा नहीं? परमात्मा तक भी इस पर विराजने की इच्छा करता है। जब अन्तःकरण विशुद्ध हो, इतना निर्मल कि भक्ति रस से अच्छी तरह सींचा गया हो, परमात्मज्ञान से पूर्ण उज्ज्वल चमक रहा हो–तब परमात्मा इसमें विराजमान होने की इच्छा करता है। दर्शन मांगने की आवश्यकता ही नहीं–वह स्वयं आकर देता है।

सांस–सांस नाम की माला

नन्हें बच्चे का अवलम्बन मां है। एक क्षण भी अवलम्बन से जुदा नहीं रह सकता। अवलम्बन के बिना व्याकुल होकर चिल्लाता है। मछली का अवलम्बन जल है। बिना जल एक क्षण में बाहर तड़प–तड़प मर जाती है। बच्चा बढ़ता है–इसका मन और अवलम्बन पकड़ लेता है–तब मां भूल जाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा सांस–सांस तेरे नाम की माला बन जाए–का सही रूप अब दर्शन में आया। केवल सांस–सांस से जप करना अभिप्रेत न था–गुरु नानक देव जी का कथन **'आखां जीवां, विसरां मर जां'** जैसे मछली बिना पानी मर जाती है।

मनुष्य प्रभु की उपासना में सफल क्यों नहीं होता?

'मनुष्य प्रभु की उपासना में नित्य बैठता है–पर सफल होता नहीं या पाता कुछ नहीं, कारण?'–उपासक यदि प्रकाश को, प्राप्त को प्राप्त करना चाहता है तो प्रभु को क्या समझे? प्रकाश तो अग्नि से ही होता है। तब अपने आत्मा को समिधा बनाकर प्रस्तुत करे। केवल प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नहीं, जैसे समिधा अग्नि में पड़ती है तो इसमें अग्नि तो प्रवेश करती है–पर बढ़ती, चमकती जोर से तब है–जब घी बार–बार डाला जाए। तो श्रद्धा भक्ति से, बार–बार, आत्मा खूब जमेगी। परन्तु जैसे हवन सामग्री अग्नि में पड़ती है तो संसार का कल्याण करती और सुगन्धि फैलाती है। ऐसे ही उपासक अपने कर्म और कर्मफल की आहुति भी निरन्तर देता रहे। अहम्–मम अपने पास न रखे, तो अपना प्रकाश, दूसरे संसार का कल्याण होगा। जैसे कि मन्त्र है–

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे–इदन्न मम्। इति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे रोम रोम में बसने वाले भगवान् के गुण हममें क्यों नहीं आते?

हमने प्रभु को मन में बसाया नहीं—इसलिए इस का कोई भी गुण हमारे अन्दर नहीं आता। प्रभु ऐसे हमारे अन्दर बसता है जैसे मनुष्य एक मकान में बसता है। बसने वाले मनुष्य के गुण मकान के अन्दर नहीं आते क्योंकि वह जड़ है। ऐसे ही मनुष्य का मन भी जड़ मकान समान है। इसमें प्रभु बसता है पर गुण नहीं आते। हां मनुष्य ने जिसे भी अपने मन में जितना बसा लिया—उतना उसे उसका मान होता है। मनुष्य के मन में मकान बसा हुआ है—मकान टूटा या गिरा; तो उसके मन में दुःख तुरन्त होने लगा। मनुष्य के मन में पुत्र बसता है। उसके दुःख में कितना व्याकुल हो जाता है। यदि प्रभु बसता तो प्रभु का प्रेम भी अवश्य होता। उसके विरह में, जुदाई में, व्याकुल हो जाता। हमारे रोम—रोम में बसने वाले भगवान् के गुण हममें क्यों नहीं आते? स्त्री—पुरुष जब तक एक दूसरे को कोई दर्जा देकर दिल में न बसाएं, एक नहीं हो सकते।

लोभी—अविश्वासी, अहंकारी—अस्वीकृत

अहंकारी मनुष्य की प्रार्थना दिखावे की होती है और स्वीकार नहीं होती। लोभी स्वार्थी मनुष्य को प्रभु पर विश्वास नहीं जम सकता, अपनी ही बुद्धि पर विश्वास करता है।

२५—२—४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभु विस्मृति

१. पेट का चक्र ऐसा अद्‌भुत है कि प्रभु भूल जाता है। २७–२–४८

२. जब कंजूसी आ घेरे, या भय सवार हो जावे, शुभ काम और प्रभु नाम छूट जाते हैं। प्रमादी तो पूरा उतर ही नहीं सकता। २६–२–४८

उपासना के अन्त में आत्म निरीक्षण

अन्तःकरण शुद्धि सहित जो यज्ञ और जप, ध्यान और चिन्तन किया जाता है, उसके अन्त में अपने अन्दर पड़ताल कर लेनी चाहिए। जितना–जितना स्वार्थ का त्याग हुआ होगा उतनी–उतनी यज्ञ–बुद्धि यज्ञभावना उत्पन्न हुई होगी और जितना अहंकार अभिमान प्रभु–अर्पण हुआ होगा–उतना भक्ति भाव या भक्तहृदय बना होगा। वैर और आसक्ति भी स्वार्थ की उपज है, और कठोरता अहंकार की उपज है। वे भी उतने–उतने कम हुए होंगे। आहार का स्वार्थ आसक्ति पैदा करता है, व्यवहार का स्वार्थ वैर, ईर्ष्या के रूप में पैदा करता है अहंकार से विचार में कठोरता पैदा होती है।

जो गृहस्थी आध्यात्मिक यज्ञ अन्तः शुद्धि–अर्थ करना चाहें वे कोई ऐसा व्रत अवश्य लें–जो उनके लिए कल्याणकारी हो। किसी बुराई का त्याग करें जो अन्तःकरण की पवित्रता में बाधक बन रही हो।

देना आसान	लेना कठिन	लेना आसान	और देना कठिन	
द्रव्यदेकर	गुण लेना	उपदेश लेना	बुराई त्यागना	
सेवा आसान	कठिन	आसान	कठिन	४–४–५३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वास की कमी का कारण और फल

मनुष्य जो फल की प्रार्थना करता रहता है—सच्चे हृदय से भी, निर्मल मन से भी, प्रार्थना करते हुए फिर फल की इच्छा पूर्ति के लिए प्रभु से बार—बार जोर दे देकर मनवाना चाहता है, यहाँ तक कि बालकों की भांति रो पड़ता है। तो इसका कारण क्या है? प्रभु को जानता हुआ भी कि प्रभु न्यायकारी है और कर्मफल दाता है तब भी प्रार्थना में फल की इच्छा करता है। कारण यह कि प्रार्थना करने वाला भक्त तो है पर अभी उसे पूर्ण विश्वास नहीं। तन सुख और मन मान—प्रतिष्ठा का मोह रखता है—इन्हीं के कारण से विश्वास की कमी और प्रार्थना में फल की मांग करनी पड़ती है। विश्वास की कमी का कारण अज्ञान है। जितना ज्ञान कम होगा, उतना ही विश्वास कम होगा।

विश्वासी निश्चिन्त

विश्वास ही आत्मा की शक्ति है। प्रभु देव ने प्रत्येक मनुष्य में विश्वास की शक्ति अन्दर रख दी है। बिना विश्वास तो जीवन चल ही नहीं सकता। वह विश्वास गुप्त रूप से देता है। बच्चा अन्धविश्वासी है, मां—बाप उसकी सब आवश्यकताएं बिना कहे पूरी करते हैं। वे स्वयं चिन्ता करते हैं। बच्चे को न चिन्ता का ज्ञान है, न विश्वास का। यह विश्वास अज्ञान के आश्रय बढ़ता रहता है। विश्वास से ही मन को दिलासा रहता है। जहां विश्वास में कमी आई, वहां चिन्ता ने मन को घेर लिया। १८—१—४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण विश्वास वाला

विश्वासपूर्ण मनुष्य ही ईश्वर का पूर्ण भक्त हो सकता है। भक्तों, साधकों, मनुष्यों का विश्वास भी कई प्रकार का होता है—पूर्ण नहीं। ऐसे भक्त भी हैं जो अपने आपको पूर्ण विश्वासी कहते हैं और प्रभु पर भरोसा रखते हैं कि वह हमें देता है—क्या? अन्न—वस्त्र, जीवन की आवश्यकताएं और ज्ञान। उनको यह तो विश्वास है कि प्रभु ही हमारा आश्रयदाता है, माता—पिता है, पर उसे अपना सखा और मित्र हितैषी समझने वाला कोई विरला होता है। उनको यह तो विश्वास होता है कि भोजन आदि की चिन्ता नहीं कि कौन देगा? कहां से मिलेगा? पर जब कोई पूछने वाला समय तक न आवे, भूख लग जाए, समय गुजर जाए, व्याकुल होने पर अब महसूस करे या जाकर मोल लेवे, या दरवाजा किसी का खटखटावे या अपमान जानकर खरीदने या दरवाजा खटकाने न जावे, किसी अपने प्रेमीभक्त के घर जावे, या बहाना बनाकर चला जावे—तो समझना चाहिए कि उसे प्रभु के कर्म फल दाता का भी सन्देह है और उसे मित्र समझने में भी शक है। पूर्ण विश्वासी वह है जिसे प्रथम तो न मिलने पर भूख का ख्याल अनुभव नहीं होता, यदि होता भी है—क्योंकि यह भूख प्राण की चीज है, प्राण की तृप्ति के लिए तो वह समझता है कि आज इस शरीर का भोग नहीं या प्रभु देव मित्र होने से न देने में भी उसकी भलाई समझते होंगे। वह यह नहीं कहता कि मुझे नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मिला–अपितु इस शरीर को नहीं मिला। वह तो साक्षी रूप बन जाता है। जब कोई हानि हो, या अपमान हो, या दुःख–मुसीबत आए तो यदि उसे महसूस करता है, और दिल में रखता है–तो प्रभु को अपना मित्र नहीं समझता। पूर्ण विश्वासी हर अवस्था में प्रभुदेव को ही अपना सच्चा हितैषी और शरीर–मन–प्राण और आत्मा का स्वामी समझता है। जब तक साधक पूर्ण रूप से समर्पित नहीं हो जाता–तब तक विश्वास की कमी रहती है। पूर्ण विश्वास हो जाने पर ही सम्पूर्ण पूरा होता है–पहले नहीं। पूर्ण सत्य ज्ञान होने पर ही पूर्ण विश्वास जम सकता है–पहले नहीं। **सत्य ज्ञान नींव है और विश्वास अन्त है।** १६–१–४६

जाने बिना माने–माने बिना जाने

मनुष्य में भारी दोष क्या है?

१. जैसा जानता है वैसा मानता नहीं।

२. जैसा मानता है वैसा जानता नहीं।

क्या–क्या?

(अ) जानता है कि शरीर और पुत्र, परिवार, धन दौलत और माल सब नाशवान हैं। प्रतिदिन आंखों के सामने देखता और कानों से सुनता है पर फिर भी इन्हीं विनाशवान पदार्थों में आसक्ति करता है, इन्हीं के लिए पाप कमाता है, और जानता है कि पाप का फल अवश्य दुःख भोगना पड़ेगा, पर फिर भी पाप में रुचि रखता है और जानता है कि 'पहले बनी प्रारब्ध पीछे बना शरीर', पर विश्वास नहीं आता। अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुराई पर भरोसा करता है भगवान् पर नहीं।

(आ) मानता है प्रभु सर्वव्यापक है, सर्व शक्तिमान् है और दयालु, सर्व अन्तर्यामी है, पर इसको वैसा जानता नहीं कि कैसे सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी है। न्यायकर्ता और दयालु कैसे है?

कौन परमेश्वर को जानता है?
और कौन परमेश्वर को मानता है?
उनके क्या–क्या चिह्न हैं?

१. जो तो परमेश्वर को जानता है–पाप और मौत उससे भागती है–वह पाप और मृत्यु से निर्भय हो जाता है, और उसे कोई भी भय नहीं सताता, और जो परमेश्वर को मानता है–वह पाप और मृत्यु से कांपता है। वह हर समय परमेश्वर से डरता है।

२. परमेश्वर को जानने वाले के सामने परमेश्वर सदा रहता है–वह सर्वत्र परमेश्वर को देखता है अपितु वह अपने आपको चारों ओर परमेश्वर से ओत–प्रोत पाता है, इसलिए निर्भय रहता है। परमेश्वर के प्रेम और दया स्वरूप का भान करता रहता है और परमेश्वर को मानने वाले के सामने मौत का दृश्य रहता है, और प्रभु के न्याय–सत्ता को भान करता रहता है, तभी पाप से डरता और बचा रहता है। जिन में यह चिह्न नहीं वे केवल प्रभु के शब्द रूप से (मौखिक) कहने वाले हैं न मानने वाले हैं, न जानने वाले।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापवृत्ति का चिह्न

प्रत्येक मनुष्य में पाप की वृत्ति तो उठती है—पर पापी और धर्मात्मा में उठने पर उनके शरीर की अवस्था भिन्न—भिन्न हो जाती है।

पापी चाहे शरीर से कितना ही कमजोर क्यों न हो—जब उसके अन्दर पाप की वृत्ति उठती है—तो उसके शरीर में आसुरी बल आ जाता है, वह शरीर उत्तेजित हो जाता है और पाप करने पर उतारू हो जाता है। परन्तु जब धर्मात्मा मनुष्य में पाप—वृत्ति उठती है—उसका शरीर मुर्दा और शिथिल हो जाता है, कांपने लग जाता है, उसकी नस—नस से बिजली निकलने लग जाती है, उसका शरीर भीरु और कमजोर हो जाता है और उसे पाप से बचाता है। पहले (पापी) का मन दुर्बल हो जाता है, और दूसरे (धर्मात्मा) का सबल और निर्मल। यदि धर्मात्मा के मन में उठी वासना उसके शरीर को शिथिल भी करे और प्राण की उत्पत्ति भी करे, तो उसका मन निर्बस हो जाता और वाणी थथला जाती है।

पाप से निवृत्ति और पुण्य में प्रवृत्ति

ज्ञानी विरक्त लोग तो मृत्यु का साक्षात् किये—सदा मौत को सन्मुख रखते हैं। इन्हें प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता का भान हर समय रहता है। इसलिये उन से पाप नहीं होने पाता। गृहस्थी लोग और साधारण जन मृत्यु को, मगर देखते हुए भी याद नहीं रखते—वे प्रभु की पूजा और याद, प्रभु की कृपा और दया के अनुभव को सन्मुख स्मरण रखें तो वे भी ईश्वर—भक्त बन, पाप से बच सकते,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और पुण्य में प्रवृत्त हो सकते हैं अन्यथा नहीं। १६–१०–४६

भय और प्रेम

संसार को वश में रखने वाली दो शक्तियां हैं–एक भय दूसरी प्रेम। भय से छोटे को हानि पहुंचा नहीं सकते, और प्रेम से हानि होने नहीं देते। वे स्वामी की हानि को अपनी हानि समझते हैं। वे हितचिन्तक और हितैषी रहते हैं। परन्तु जहां भय न हो और प्रेम भी न हो–वहां बे–परवाह रहते हैं। हानि हो जाए तो उन्हें कुछ दुःख नहीं होता। कोई हानि कर दे–हानि पहुंचा दे–तब भी वे मौन रहते हैं। यह समझ कर कि हमारा क्या? घर परिवार में, कारोबार में, राज दरबार में, सब स्थानों पर भी दो वस्तुएं काम कर रही होती हैं। इनके अभाव में शासन, व्यवहार कार्य और परिवार का सब कार्यों में बल नहीं रहता। अपितु प्रभु–भक्ति, प्रेम में भी यही दो हैं, जो भक्त को सफल बनाते हैं। भक्त संसारी प्रलोभनों विषयों से भय खाता है, पाप कर्मों से तभी बचता है–जब वह प्रभु के न्याय से डरता है। और प्रेम के कारण से वह प्रभु की रक्षा, दया का पात्र बनता है। और एकता पा कर प्रभु के वास्तविक स्वरूप और ज्ञान को अनुभव करता है। २–८–४६

दया और कृपा

भगवान् की सहायताएं तो अनेक हैं, परन्तु दो हमारे लिए प्रसिद्ध हैं, एक दया, दूसरी कृपा। बिना मुआवजा, बिना मांग, क्षण में सारे ब्रह्माण्ड को भर देता है। दूसरी थोड़े ही कर्म करने के शत सहस्र गुणा दे देता है। २६–४–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्त में तीन गुण आवश्यक

भक्त में तीन वस्तुएं चाहियें–दृढ़ता, स्थिरता, विमर्शता। दृढ़ता–दृ का अर्थ है–फाड़ना, कम्पन और हठ। हठ पैदा होता है मोह से–मोह के नाश करने से ही दृढ़ता आती है। जब तक मोह रहेगा–दृढ़ता न आएगी।

स्थिरता–चित्त में कामवृत्ति से चंचलता आती है–इसे बन्द करने से स्थिरता आती है।

विमर्शता–विचार–शक्ति–बुद्धि में लोभ के कारण दुराचार और क्रोध के कारण विचारहीनता होती है। लोभ क्रोध का मर्श मर्दन करना ही विचार–शक्ति है–विमर्श है। ७–५–४६

प्रकृति में परमेश्वर का अहं कार्य कर रहा है जैसे यजुर्वेद में कहा है–

ओ३म् हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषःसोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म।।

यजुर्वेद ४०–१७

प्रकृति ने उस सत्यस्वरूप प्रभु को अपने अन्दर छिपाया हुआ है। किस रूप में? उसे प्रभु ने स्वयं दर्शाया। जो इस आदित्य में है–सो वही मैं हूं। और **ओं खम्ब्रह्म** से अपना नाम बतलाया।

जैसे प्रकृति में प्रभु की अहं शक्ति काम करती है, ऐसे प्रकृति से बने मानव शरीर में–जिसने आत्मा को अपने अन्दर छिपाया हुआ है, उसकी भी सूक्ष्म है। प्रकृति से बना अहंकार अहं शक्ति, समस्त काम कर रही है। बिना इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकार के कोई भी कार्य नहीं हो सकता। यह सतोगुणी भी है, रजोगुणी भी है और तमोगुणी भी। इसकी अवस्थाएं हैं। जब यह अहम् अहंकार जड़ पदार्थों में, नाशवान पदार्थों में अर्पण हो जाता है, तब वह सब इसे अपनी वृत्ति और गुण का बना देते हैं। मोह से अर्पण हुआ–तो मोह के गुण रहता है। लोभ से अर्पण हुआ–तो लोभ गुण, काम से अर्पण–क्रोध, अहंकार से अर्पण हुआ। जिस भी रूप में वह अर्पण होता है, उसी–उसी के गुण, कर्म, स्वभाव को प्राप्त होता है। जब अहंकार पूर्ण रूप से उस जड़ में अर्पण हो जाता है, बहुत का....नाश.....हो जाता है। और फिर देर नहीं लगती और जब अहंकार परमेश्वर में अर्पण हो जाता है, तो परमेश्वर का गुण, कर्म, स्वभाव चेतनता आनी आरम्भ हो जाती है। जब पूर्ण रूप से अहंकार को अर्पण कर देता है–तब पूर्ण चेतनता (जितनी जीवात्मा में आनी चाहिए) आ जाती है।

मनुष्य जीवन–परोक्ष ज्ञान अर्थ

मनुष्य का जन्म परोक्ष वस्तुओं के साक्षात् करने के लिए हुआ है। कोई भी अन्य योनि परोक्ष को नहीं जान सकती। वैसे तो मनुष्य भी नहीं जान सकता कि मेरी पीठ पीछे क्या हो रहा है और दो दिन की खाई वस्तु को भी याद नहीं रख सकता। परन्तु मनुष्य बना इसलिए है कि वह उन परोक्ष वस्तुओं का ज्ञान पाए–जो किसी और योनि में नहीं पा सकता। क्या–क्या परोक्ष है? १. परमात्मा परोक्ष है, २. आत्मा परोक्ष है, ३. मन परोक्ष है, ४. धर्म परोक्ष है, ५. कर्मफल। यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस जन्म में इनमें से किसी एक का भी ज्ञान कर लिया तो समझो जन्म का उद्देश्य सफल हो गया। यदि नहीं जाना तो पशुवत् रहा, चाहे वह बड़ा पढ़ाकू भी बन गया हो। २१–३–४६

विज्ञान की उत्पत्ति दो प्रकार से

विज्ञान दो प्रकार से पैदा होता है, एक कर्म से दूसरा उपासना से। कर्म से जो विज्ञान उत्पन्न होता है, वह भौतिक होता है पदार्थ का। और उपासना से जो पैदा होता है वह परोक्ष वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है। जैसे एक लोहार ने आग का अंगारा उठाना चाहा तो एक हाथ की अंगुलियों से उठाया यह उसका देखा हुआ ज्ञान है। अब कर्म से उसका हाथ जल गया तो अब विचारने लगा, दो लकड़ियों को मिलाकर दोनों हाथों से उठाया तो खुश हुआ। फिर सोचा कि दोनों हाथों के स्थान पर एक हाथ से काम लूं, तो चिमटा बनाया। ऐसे उसे विस्तार देता गया। उपासना में बैठा अन्तर्ध्यान हुआ, परोक्ष वस्तु का ज्ञान सूझने लगा, जन्म का दिन याद आया कि कान में "वेदोऽसि" कहा था और नामकरण पर "कोऽसि, कतमोऽसि" सुनाया गया था तो उसकी खोज में लग गया। यहां तक कि तत्व का ज्ञान मन आत्मा तक चला गया, अन्तर के कोषों और कर्मफल, अदृष्ट का विचार करने लगा। तो यह विज्ञान–ब्रह्म ज्ञान बन गया। २६–३–४६

भोगी और योगी

दो प्रकार की एकाग्रता में भेद–एकाग्रता से पवित्रता और प्रकाश दोनों मिल सकते हैं। एकाग्रता दो प्रकार की होती है। एक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो अन्दर से बाहर के लिए—दूसरी बाहर से अन्दर के लिए। जो एकाग्रता बाह्य के कार्यों के लिए होती है, उसमें प्रकाश तो अवश्य आता है, जरूरी नहीं कि पवित्रता भी हो, और जो एकाग्रता अन्दर के लिए होती है, उसके प्रकाश से पवित्रता जरूर ही हो जाती है। बड़े बड़े कलाकार और वैज्ञानिक देखे गए हैं जिनकी एकाग्रता से प्रकाश ने बाह्य के अन्वेषणों में आश्चर्यजनक कार्य दिखलाए—परन्तु उनमें पवित्रता नाम को नहीं, अन्तर से शून्य हैं। परन्तु बाहर से अन्दर जाने वाले का कोई चमत्कार न होने के बावजूद भी पवित्रता बड़ी देखी जाती है।

'दो प्रकार का ज्ञान' आध्यात्मिक, भौतिक

आध्यात्मिक—जब भक्त के हृदय में अन्दर बाहर प्रकाश हो जाता है, तो वह ऐसे देखता है—जैसे दिन में किसी कमरे के द्वार पर चिक लटकी हुई हो, तो बाहर का आदमी अन्दर नहीं देख सकता, अन्दर वाला बाहर वाले को देख लेता है।

भौतिक—जब केवल अन्दर प्रकाश हो तो बाहर वाला देख सकता है—अन्दर वाले को। परन्तु अन्दर वाला नहीं देख सकता, बाहर वाले को। ५—१—४६

नाम के प्रभाव का रहस्य

कहते हैं—नाम में प्रभाव या जादू होता है। वास्तव में नाम में तो प्रभाव नहीं, अपितु नामी ने जिस स्वभाव से काम (कर्म) किया होता है वह स्वभाव नाम में, वैसा गुण बन जाता है। उदाहरणतः ऋषि दयानन्द नाम का अर्थ तो नरम है पर काम गरम होने से नाम में गर्मी (जोश) का प्रभाव है। महात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी के काम से नाम में भी स्वभाव का जादू है। नाम का अर्थ, नमस्कार करने वाला, नमस्कार कराने वाला। नमस्कार करने और कराने के लिए मनुष्य का जीवन है। जिस मनुष्य को नमस्कार करने वाला नहीं, और जो मनुष्य किसी को नमस्कार नहीं करता, वह अनाथ, उत्तराधिकारीहीन, व्यर्थ और पशु से भी गया गुजरा है। उसका जीवन व्यर्थ समझो।

नमस्कार उसे नहीं होगी जो गुणहीन होगा या पागल होगा, अपने जीवन में किसी का कुछ उपकार नहीं कर सकता। और स्वयं नमस्कार वह नहीं करेगा जो या तो महान् अहंकारी होगा, या महामूढ़ होगा, पागल होगा!

नमस्कार करने से प्राप्ति, नमस्कार करने से त्याग की अवस्था होती है, अर्थात् जितना कोई अधिक प्राप्त करना चाहता है, वह अधिक नमस्कार करने से ही प्राप्त कर सकता है। प्राप्त करने की वस्तु प्रेम, ज्ञान और ऐश्वर्य है।

और जो जितना त्याग करेगा। उतना ही नमस्करणीय बनता जायेगा। त्याग करने की वस्तु है—स्वार्थ, अहंकार, सम्पत्ति की आसक्ति।

नमः एक बिजली है, जो जला देती है अहंकार को। नमः एक जल है जो पवित्र कर देता है और मिला देता है, परमात्मा से, बुजुर्गों से, विद्वानों से। ११–४–४८

नमस्कार का सच्चा स्वरूप

नमस्कार का अर्थ मस्तक टेकना, सिर चरणों में झुकाना। सिर ज्ञान का केन्द्र है, ज्ञान ही सब से श्रेष्ठ है। सब बलों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ज्ञान–बल ऊंचा है, और बल में अहंकार छिपा रहता है। ज्ञानी (कोरे ज्ञानी) को अभिमान, अहंकार अभी अधिक होता है, इसलिए मस्तक टेकने का जो अर्थ हुआ कि अपने–ज्ञान बल के अहंकार को अर्पण करना, या झुका देना।

मनुष्य को किस बात का ज्ञान सदा बना रहता है? वह ज्ञान है, मैं पन का, मैं हूं। बस इसी "मैं" को अर्पण करना ही नमस्कार (सच्चा) है। जो नमस्कार तो करता है पर मैं का अहंकार भी रखता है वह अर्पण नहीं कर सकता। ३–७–४८

यश की चाहना क्यों?

प्रश्न–मनुष्य यश क्यों चाहता है? जैसे शरीर बिना भोजन के स्थिर नहीं रह सकता और भोजन से ही शरीर बलवान् होता है, ऐसे ही आत्मा। पर शरीर बना है प्रकृति का, देवों के अंश से, इसलिए इस का भोजन भी अन्न आदि देवता हैं। आत्मा अप्राकृतिक है और अनादि नित्य है। परमात्मा का नाम 'महद् यशः' है। इसलिए यश ही इसका भोजन है। संसारी लोगों से जो यश इसे प्राप्त होता है–वह कर्म, परोपकार का फलस्वरूप है। जो लोग इस परोपकारी सेवक को पारितोषिक देते हैं, पारितोषिक तो आत्मा का आहार नहीं, अपितु अहंकार की प्रसन्नता के लिए होता है। परमात्मा जब भक्त के हृदय में उसी के नामस्मरण पर आ विराजता है–तो "महद् यशः" के रूप में आता है और अपने भक्त की आत्मा को यश से पूर्ण कर देता है। वही यश एक शक्ति बन कर भक्त के मुखमण्डल से बाहर टपकता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और संसारी जनता उससे प्रभावित होकर भक्त का यश गाने लग जाती है। भक्त चूंकि महद् यश से भरपूर हो जाता है—उसे लोगों के यश की दर्शकता तो क्या, इच्छा ही नहीं रहती। वह यश से पूर्ण—तृप्त होता है। क्योंकि यश मनुष्य का आहार है, इसलिए जिस किसी को प्रभु से यश नहीं मिलता तो बाहर के साधनों से यश प्राप्ति के लिए साधन करता है।

२६—६—४६

अभिमान से गिरावट कैसे?

मनुष्य की गिरावट का मूल कारण अभिमान होता है, परन्तु कार्य, कारण अन्य में दिखाई देता है। इस बात का अभिमान कि मैं विद्वान् हूं या बलवान् हूं, या पवित्र हूं, निष्काम हूं, त्यागी हूं, या वैरागी हूं, भक्त या ज्ञानी हूं, ध्यानी हूं या व्रती हूं, अभिमान नहीं है। यह तो सच्चाई है। सच्चाई तो उन्नति का साधन है। साधन की सुरक्षा करनी और जिससे वह प्राप्त हुई है—उसकी दात समझनी। फिर अभिमान क्या है? इस बात का अभिमान कि मैं विद्वान् हूं, मुझे कौन हरा सकता है? मैं धनवान् हूं। मैं किसी का मोहताज थोड़े हूं। मैं बलवान् हूं, मेरा मुकाबला कौन कर सकता है? मैं पवित्र हूं मुझे कौन स्पर्श कर सकता है? मैं निष्पाप हूं मुझे कौन कलंकित कर सकता है? मैं त्यागी हूं मुझे किसी की क्या परवाह है? मैं वैरागी हूं संसार के विषय मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं? मैं भक्त हूं, मैंने तो भगवान् को बस में किया हुआ है, मुझे कौन वश में कर सकता है? मैं ज्ञानी हूं मुझ से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गलती नहीं हो सकती। मैं ध्यानी हूं–जो चाहूं देख सकता हूं। मैं दानी हूं, मेरे दरवाजे पर अपने आप सब कोई आता है। साधु संत भी अपने आप मेरा घर–दर पूछते आते हैं। गरीब, दीन तो हर समय मेरा नाम पुकारते हैं। मैं रागी हूं मेरे जैसा कोई गा नहीं सकता–यह अभिमान का स्वरूप है। इन शब्दों में अहंकार क्रोध–शक्ति को अपने अन्दर छिपाए ऐसे होता है जैसे सोटी में गोप जिस का ज्ञान गुमान ही किसी को नहीं। क्रोध का काम है ज्ञान को नष्ट करते रहना, और मानसिक बल को हठी और कठोर बनाते रहना, फिर सब कार्य इन्हीं के अनुकूल कराते रहना।

साधक के मार्ग में अहंकार बाधक है

पानी को जब तक निचान प्राप्त रहे–वह बहता चला जा कर समुद्र तक पहुंच जाता है, परन्तु जब कोई ऊंचाई का टीला आ जावे–तो रुक जाता है। ऐसे ही मनुष्य साधक जब तक नम्रता से चलता जाता है–वह लक्ष्य को पहुंचता जाता है। जब भी अहंकार आया–वहां ही उसका बहाव–साधना की गति रुक गई। २८–७–४६

क्रोध के चिह्न

अधिक क्रोध में आ कर कुत्ता बार–बार भौंकता है, दांतों से काटता है। शेर, चीता पंजों से चीर फाड़ देता है। हाथी सूंड से पकड़ कर पाँवों के नीचे रौंदता है। गधा, घोड़ा दुलत्तियों से और दांतों से काटता है और मारता है। बैल, भैंस सींगों से हमला करते हैं। ऊंट दांतों से काटता है। कव्वा, चील चोंच से ठोंपा लगाते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांप दांतों से डसता है। बिच्छू, भिड़, मच्छर पीछे से डंक लगाते हैं। चींटी, मकौड़ा मुंह से काटते हैं। भेड़िया और मकड़ी फंसा कर घेरे में डालते और शिकार करते हैं। अभिप्राय–क्षुद्र जन्तु और पशु–पक्षी सब को क्रोध आता है और वे अपने–अपने हथियार चलाते हैं। मनुष्य भी क्रोध में आ जाता है तो इसी पाशविक वृत्ति से मुंह से गाली–गलोच देता, बदज़बानी करता है, कुत्ते की तरह काटता है, और ताने दे–दे कर शेर की तरह दिल फाड़ देता है। कव्वे चील की तरह दाग लगाता है। हाथों से भी मारता है, पाँवों से भी ठुकराता है, गधे, घोड़े और बन्दरों का काम करता है। जब बुद्धि से लड़ता है–तो भेड़िये मकड़ी की तरह पार्टी बना, फांसता है, घेरा डाल फन्दे में फंसाता और तमाम काम करता है। इसमें पशु और मनुष्य में कोई विशेषता नहीं रहती। २–६–४६

सफल साधना–साधक! सावधान रह

१. जिसने साध्य को नहीं समझा–वह साधन से आन्तरिक लाभ कम ले सकेगा।

२. जितना साधन में प्रमाद या आलस्य होगा, उतना साध्य से दूर होता जायेगा।

३. साधन में जितनी छोटी चीज में अधिक सावधानी होगी उतना साधन से बल बढ़ेगा। यदि छोटी चीज़ की अवहेलना की गई–यह समझ कर कि चलो जी, यह मामूली–सी बात है, इसके न करने से कोई हर्ज नहीं हो सकता, तो नींव कमजोर रहेगी, अनुभव में कमी रहेगी। २–६–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म और ज्ञान का फल बार–बार

१. प्राप्ति कर्म से होगी और प्रयोग ज्ञान से।

२. पवित्रता कर्म से होगी, शान्ति ज्ञान से।

३. नियम बनाना ज्ञान से होगा, पालन करना कर्म से।

४. तप कर्म से होगा–प्रकाश उपासना से।

५. किसी में जान डालना ज्ञान से होगा, पर पालना कर्म से होगी। ३–६–४६

साधक के मार्ग में तीन बाधाएं

साधक मनुष्य का मार्ग कब रुक जाता है?

१. जब इसकी प्रशंसा अधिक होने लगती है।

२. और भक्त लोग उसे अपनी सेवाओं से आराम तलब बना देते हैं, उसे पुरुषार्थ और सेवा करने नहीं देते, श्रद्धा के कारण।

३. जब साधक अपने आप को अपनी साधना में पूर्ण समझ बैठता है। १–८–४६

मान की मात्रा

योग्यता में मान अंतर्हित रहता है, जैसे अंक में शून्य। योग्य मनुष्य का मान उसकी योग्यता में प्रभु ने छिपा रखा है। इसका जब मान इतना होता है, जितना वह योग्य है, तो उसे प्रतीत नहीं होता, उसे प्रसन्नता नहीं होती, अपितु शान्त, तृप्त रहता है। स्वभाव से, यह मान, उसे गिराता नहीं, चमकाता भी नहीं। जब योग्यता से अधिक मान होने लगता है, तो वह उसकी अयोग्यता का चिह्न है, उसे प्रसन्नता भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक होती है। और वह उसे चमका कर गिराने का कारण भी बन जाता है। २–८–४६

मान सम्बन्धी पहाड़ जैसी भूल

सारे संसार में जो तो पूर्ण योग्य है, उसका तो कोई मान नहीं करता और अयोग्य का मान हो रहा है। यह भी एक पहेली है। कौन–कौन ऐसा है? प्रभु ही पूर्ण योग्य हैं–उनका मान कोई नहीं करता। और माया जो असत्य है–उसका मान ही मान है। माया ने मूर्ति का भी मान कराया, और जिस मनुष्य की बनी उसका भी मान ही मान हो रहा है।

जो मान का भूखा है–उसे मान खा जाता है, और जिसका मान भूखा होता है, वह मान को भी पी जाता है। यह मान विष है–दूसरा मान अमृत बन जाता है। अमृत पीने वाला कोई विरला और विष खाने वाले बहुत हैं।

त्याग दो अपनों को भी–और कब?

तुम्हारा स्वार्थ तुम को परमार्थ से हटाने वाला न हो, अपितु परमार्थ के निकट ले जाने वाला हो, तब तुम मनुष्य जीवन को सफल बना सकते हो।

१. वह कार्य–व्यवहार न करो, जो तुम्हें अपने शरीर और परिवार से प्रमादी बनावे।

२. उस अपने परिवार को भी त्याग दो, जो तुम्हें अपने माता–पिता की सेवा से हटाता और आज्ञा पालन करने में बाधक है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. उस माता–पिता से भी पृथक् हो जाओ–जो तुम्हें गुरु, सत्याचरण में बाधक हों।

४. उस गुरु का भी संग छोड़ दो, जो तुम्हें पीड़ित जाति, देश की सेवा से रोके।

५. उस जाति और देश से भी किनारा कर जाओ, जो तुम्हें पाप के गढ़े में गिराने वाली हो, और प्रभु से विमुख कर देने वाली हो। अपितु–

१. तुम वह कार्य–व्यवहार अपनाओ–जिससे तुम्हारा शरीर, परिवार स्वस्थ रहे, उनमें प्रेम बढ़ता रहे।

२. तुम्हारा शरीर और परिवार वही श्रेष्ठतर है–जो तुम्हें माता–पिता की सेवा और आज्ञाओं में रहने से आशीर्वाद दिलवाए।

३. उन माता–पिता का यशोगान करो, जो तुम्हें–गुरु, सत्याचरण के पालन में सहायता देवें, और तुम्हें होशियार और तत्पर बनाए रखें।

४. उस गुरु के नाम को उज्ज्वल और ऊंचा करो, जो दीन पीड़ित जाति देश की सेवा में हर समय तुम्हारा पथ प्रदर्शन करता रहे।

५. वह जाति–देश सौभाग्यवान् है, जो प्रभु की कृपा का पात्र बनाता है, और संसार में उज्ज्वल नाम कराता है। ७–६–४६

सरल सहज सत्य–अति कठिन सत्य बोलना

१. संसार में सबसे अति सरल, सहज स्वभाव मनुष्य के लिए क्या है, और सबसे कठिन क्या है? सत्य सरल सहज स्वभाव है, और यही सत्य बोलना ही सबसे कठिन है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. एक कमरे में बैठे मनुष्यों के लिए देखना और सुनना, प्राण लेना या सूंघना तो साधारण–सा काम है, पर किसी को कहा जावे कि आप बोलो, तो वह कतराता है, डरता है। कोई विरला बोलने के लिए तैयार होता है–क्योंकि बोलना योग्यता का काम है। योग्य मनुष्य ही इस योग्य होता है। संसार में कदर और कीमत भी बोलने वाले की ही होती है।

३. शुद्ध उच्चारण करने वाले तो बहुत मिल जावेंगे, पर वाणी जिसकी शुद्ध पवित्र हो, ऐसे इने–गिने मिलेंगे। ८–६–४६

साधक को चेतावनी

जो लोग (साधक जन) अपने सोये हुए संस्कारों को चुन–चुन कर दूर करने की हिम्मत नहीं रखते उनको सदा भुलाये रखना ही अच्छा है। वह ऐसे शुभ कार्यों में लगे रहें, जहां उनके संस्कारों को उभरने का मौका ही न मिले। व्रतों में, एकान्त वास में, संस्कार उभरते हैं। अपने होने की चेतावनी देते हैं। जो लोग व्रत एकान्त करते हैं, वे इस बात को ध्यान में रखें कि अगर वे संस्कारों को नष्ट करने के लिए व्रत नहीं करते या हिम्मत नहीं पाते तो वे सदा काम में ही जुटे रहें यही अच्छा है। व्रत से सोई शक्तियों को उभरने का मौका न देवें। ११–१०–४८

भेष के लिए चेतावनी

यदि भेष (बाना) विवेक ने बदला है तो भेष के गुण मन में आवेंगे। यदि अहंकार ने बदला है तो भेष के गुण तो न आवेंगे, अपितु मन को गिराएंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक से कवच का काम, अहंकार से अपनी गर्दन पर तलवार नंगी का काम–भेष देता है।

विश्राम कब?

मनुष्य विश्राम तब लेता है–जब थक जाता है।

१. गर्मी में सफर करता हुआ मनुष्य जब शरीर से थक जाता है तब सफर को बन्द कर किसी वृक्ष का आश्रय ले–उसकी छाया में विश्राम करने लग जाता है।

२. दिन भर का परिश्रम भरा व्यवहार करके थक जाता है, तो मकान में पलंग के आश्रय विश्राम करता है।

३. लिखना, पढ़ना, बोलना आदि से मस्तिष्क थक जाता है तो एकान्त स्थान पर दूर जाकर मौन रूप से विश्राम करता है।

४. इस प्रकार जन्म मरण के चक्र बार–बार जन्मने और मरने से जब मनुष्य का मन थक जाता है, तब विश्राम लेने के लिए मन आत्मा का संग त्याग देता है और आत्मा ब्रह्म का आश्रय लेकर उसमें स्थित हो जाती है। बिना मन के थके ब्रह्म में आत्मा की स्थिति नहीं होती। इसलिए अथर्ववेद में आया–**'नाश्रान्ताय सख्याय देवाः।'** बिना थकने के प्रभु भी आत्मा को अपना सखा नहीं बनाता। या यों समझना चाहिये कि जब आत्मा अपने मित्र मन की करतूतों से थक जाता है–तब ब्रह्म का आश्रय लेता है। १६–५–४६

पांच सुधारक–पाञ्चजन्य पुरोहित

पतित, पापी, द्वेषी, हिंसावृत्ति रखने वाले मनुष्यों का राजा केवल दण्ड से तो अपराधियों को पाप से पृथक् रख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है, या इनका नाश कर सकता है। पतित, पापी, द्वेषी, हिंसक मनुष्यों का सुधार पांच प्रकार के आध्यात्मिक जन ही कर सकते हैं और वे ये हैं–प्रथम–तपस्वी, द्वितीय–दूसरों का दुःख हरने वाला, तृतीय–प्रभु भक्त, चतुर्थ–अहिंसा वृत्ति वाला, पवित्र राग द्वेष रहित, पांचवां–ब्रह्मचर्य के तेज बल वाला। महात्मा गांधी जी महाराज ने तो तप से, कई पादरियों ने सेवा से, गुरु नानक देव जी ने भक्ति से, महात्मा बुद्ध जी ने अहिंसा वृत्ति और पवित्रता से, ऋषि दयानन्द जी ने ब्रह्म–तेज से, कई पतित पापियों का सुधार किया।

बाहर अन्दर के शत्रुओं की आक्रमण–विधियां और रोक

हम पर शत्रु चाहे बाहर के हों, चाहे अन्दर के, युद्ध में हों या मानसिक हों, तीन प्रकार से आक्रमण करने वाले होते हैं। एक सामने से सन्मुख होकर, दूसरे पीछे से छुप कर, तीसरे दूर से प्रकट होकर या छिपकर भौतिक युद्ध में–

मानसिक युद्ध में तो आक्रमणकारी शत्रु, सामने के विषय और छिपी हुई वासनाएं हैं। दूर से आक्रमण करने वाला अहंकार है। इनका मुकाबला कैसे किया जावे? सामने के अर्थात् विषयों का तो ज्ञान योग से और छिपी वासनाओं का ध्यान योग से, और अहंकार का निष्काम कर्म से मुकाबला करके इनको परास्त किया जाता है।

इसके सम्बन्ध में अथर्व वेद काण्ड तीसरा, सूक्त १, मन्त्र ४ व ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ३०, मन्त्र ६ का मंत्र–

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्–प्रसूत इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रगृगन्नेतु शत्रून्।
धेहि प्रतीचो अनूचः प्राचो विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम्।।

शत्रु पहचान में भूल

कितना अद्भुत आश्चर्य है कि शत्रु से पशु पक्षी भी प्रेम नहीं करते, पर मनुष्य इतना बुद्धिमान् होकर अपने शत्रुओं से भी स्नेह रखता है। बारम्बार जन्म–जन्मान्तर में उनसे दुःखित होता है–तब भी उनसे प्रेम नहीं छोड़ता। कारण? सदा भूल जाता है। वे शत्रु मित्र रूप धार कर इसके सामने उपस्थित होते हैं। १–४–४६

सत्य, न्याय, दया के बाधक अवगुण

आध्यात्मिक जीवन–यज्ञ की पूर्णता के साधन सत्य, न्याय और दया हैं, इनके बाधक स्वार्थ को तो इन तीनों से घृणा है। और यह स्वार्थी के हृदय को तो स्पर्श तक नहीं करते। कठोरता के कारण मनुष्य चाहता हुआ भी इनको धारण नहीं कर सकता।

आसक्ति के कारण आसक्त मनुष्यों में प्रवेश तो करते हैं पर उसमें खोट और दम्भ मिल जाता है। वैर के कारण वैरी मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए इनको अपनाता है, और इन्हें अपना बदला लेने का हथियार बनाता है। अहंकारी मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा के लिए इनको अपना बाहरी साथी बनाता है। इसलिए भौतिक और आध्यात्मिक यज्ञ में स्वार्थ और कठोरता, वैर, आसक्ति और अहंकार, पांचों बाधक हैं। यद्यपि यह सब अवगुण मन और बुद्धि में उत्पन्न होने वाले हैं–परन्तु समझने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के लिए, कठोरता वाणी में, आसक्ति आँख में, स्वार्थ मन में, वैर भी मन में रहता है और अहंकार बुद्धि में समाया रहता है। इन के त्यागने पर मन, बुद्धि, वाणी—जो जीवात्मा के आध्यात्मिक करण हैं—शुद्ध हो जाते हैं। ३—४—५३

आहुति रहस्य

यज्ञ में जो पदार्थ अग्नि में होमे जाते हैं—वह बाह्य दुःखों का होमना है और बाह्य सुखों का फल रूप में लेना है। और योग—अग्नि में जो दुःखों को होमा जाता है—अर्थात् दुःखों के कारणों को होमा जाता है—वह आन्तरिक दुःख का होमना है, और आन्तरिक शान्ति परम सुख को लेना है। यज्ञ में पदार्थ और स्वाहा दो क्रियाएं पाई जाती हैं। पदार्थ तो ऊपर जा कर फिर लौट कर पदार्थों के रूप में मिलते हैं, पर स्वाहा स्वर्ग की सीढ़ी—शेष और ऊपर ही ऊपर ले जाती है। उस याज्ञिक को जिस के स्वाहा ने अपने आन्तरिक खोट, विकारों, दोषों को स्वाहा कर दिया है, जिसने आन्तरिक कारणों को स्वाहा कर दिया है, जिसने आन्तरिक कारणों को स्वाहा नहीं किया, उसके लिए जड़ पदार्थ मिलेंगे, और वही आन्तरिक दुःखों को बढ़ायेंगे। १०—४—५३

पुरुष की महानता और नीचता

मनुष्य गर्भ में एक महान आकांक्षा परमेश्वर—प्राप्ति की बनाता है। उत्पन्न होने पर जब उसका अहंकार जागता है, इन्द्रियां, स्थूल और सूक्ष्म शरीर विकसित होता है—तो उसकी कामना, कर्म—संस्कार और वृत्तियां हालात में बदल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाती हैं। पर महानता के संस्कार रह जाते हैं, तो क्षुद्र कामना में महानता शामिल हो जाती है। उसी क्षुद्र कामना को इतना महत्व दे देता है कि उसे चैन नहीं आता। इस क्षुद्र कामना में महानता बनाने का कारण मोह बन जाता है। अहंकार के साथ जब मोह मिल जाता है, तो बस वह कामना ही उसे प्यारी लगती है। इसी पर अपना सारा बल लगा देता है। जिन पुरुषों ने अपनी महान् आकांक्षा को पूरा करने में मोह के स्थान पर प्रेम किया—वे संसार में महापुरुष बन गए। मोह के कारण ही मनुष्य अपनी कामना को पूरा करने के लिए त्याग करता है परन्तु हठ और स्वार्थ से। प्रेम के कारण भी त्याग होता है—पर दृढ़ता और परमार्थ से।

संगति का प्रभाव

दुष्ट मनुष्य या श्रेष्ठ मनुष्य के साथ कुछ घण्टे भी किसी का वास हो, तो कितने ही समय तक कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही होता है। जैसे मिर्च को यदि कपड़े में बांध दिया जाए तो थोड़ी देर बाद मिर्च को निकाल लेने पर भी कपड़े के सूंघने से छींक आ जावेगी। यदि सुगन्धित वस्तु बांध दी जावे—तो कुछ देर बाद फिर पदार्थ निकाल लेने पर भी सुगन्धि इस गांठ में से आवेगी। २—१०—४८

आत्मिक निर्बलता

कमजोर मनुष्य अन्याय तब करता है, जब कोई स्वार्थ हो और असत्य तब बोलता है जब अपना विश्वास जमाना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
हो। ये चारित्रिक निर्बलताओं के चिह्न हैं। चारित्रिक वीर न्याय और सत्य को अपना बल समझते हैं।

गुण दो प्रकार के हैं, व्यवहारिक और स्वाभाविक–

गुण

व्यावहारिक–स्वाभाविक

नम्रता, श्रद्धा, प्रेम एक अनुपम गुण हैं।

नम्रता, श्रद्धा, यह या तो किसी व्यक्ति के प्रति कभी उसके गुण के कारण होती है। यह गुण व्यावहारिक और बाह्य समझने चाहिएं। अपने अधीन रहता है। इसमें न्यूनता, अधिकता हो सकती है।

स्वाभाविक गुण–यह किसी में मिले होते हैं अर्थात् प्रभु की दात होती है। अपने आप स्वभाव से ही।

मन की निर्बलता और दुर्बलता

कारण–काम और मोह से मन निर्बल बन जाता है। लोभ और क्रोध से मन दुर्बल बन जाता है।

परिणाम

निबल मन बुजदिल होता है। ––दुर्बल मन निर्दयी होता है।

निर्बल मन प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। ––दुर्बल मन से प्रतिज्ञा भंग हो जाती है।

निर्बल मन में समझ में कमी रहती है। ––दुर्बल मन संशयात्मक होता है।

७–६–४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की कमी

मनुष्य में कमी है कि वह जो अच्छाई करता है, कहता है, मैं करता हूं। इसलिए उस अच्छाई की प्रशंसा सुनने के लिए दूसरों का मोहताज रहता है।

कामी निर्लज्ज, क्रोधी निर्दयी, लोभी ईर्ष्यालु–वैरी, मोही हठी, अहंकारी कठोर

काम वासना बुरी है–फिर भी कामी को आनन्द आता है। लोभ बुरा है–लोभी को कुछ मिलने पर खुशी होती है। मोह क़ोढ़ कहलाता है तब भी आनन्द देता है। अहंकार भी अपने अन्दर फूंडता (गर्वित करता) है, परन्तु क्रोध आने पर सब कुछ नष्ट कर देता है। ११–४–५३

कामी तो दम्भी होता है, लोभी छली होता है। क्रोधी की अवस्थाएं भिन्न–भिन्न होती हैं। मोह से–क्रोधी, कपटी होता है, लोभ से–क्रोधी वैरी होता है, अहंकार से क्रोधी कठोर होता है। १२–४–५३

किस पांचों से क्या हानि

१. काम वासना चित्त को चंचल बनाए रखती है।

२. क्रोध से क्रोधी मनुष्य की बुद्धि अनिश्चित और संशय ग्रस्त रहती है।

३. लोभ से मन असंतुष्ट और अशांत रहता है।

४. मोह से हठ, दुराग्रह के रोग का शिकार होना पड़ता है।

५. अहंकार से जल्दबाजी, अधीरता बनी रहती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अहंकार के विविध रूप

अहंकारी मनुष्य का अहंकार जब मोह में प्रवेश कर जाता है, मोह के कारण जो उसे क्रोध पैदा होता है–उसमें हठ की तामसिक वृत्ति काम करती है (हठ का रूप धारण कर लेती है)। जब लोभ के कारण अहंकार खड़ा होता है–तो (वैर का रूप धारण कर लेता है) कीना रख लेता है। जब काम के कारण अहंकार खड़ा होता है–तो क्रोधी जान–प्राण लेने पर तुल जाता है–उसकी आंखें खूनी बन जाती हैं। ऐसे ही जब अहंकारी अपने अहंकार में खड़ा होता है–तो जल्दबाजी उसका रूप हो जाता है।

अहम् भाव का प्रभाव

प्राण––बुद्धि

मन––आत्मा

त्यागी हो या विद्वान्, यदि इसमें लोकैषणा होगी–तो प्राण और बुद्धि तो उसकी बलवान् होगी, परन्तु आत्मिक बल इसमें नहीं होगा, क्योंकि लोकैषणा में अहंभाव रहने से आत्म बल कमजोर रहता है। और अहम् प्राण, बुद्धि, मन के बल को उत्तेजित करता है।

एक–एक दो ग्यारह

१. काम जब निर्लज्जता को साथ मिला देता है–तो ज्ञानी मनुष्य के ज्ञान का गर्व चूर्ण कर देता है।

२. लोभ जब लालसा को साथ ले मनुष्य–हृदय में घुसता है तो वह ऐसी आग लगा देता है कि प्रलय की वर्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी उसे नहीं बुझा सकती।

३. क्रोध जब हिंसा को साथी बना लेता है—तो तूफान मचा, साधारण और असाधारण मनुष्य को भी जलती बलती आग में दौड़ पड़ने को उकसा देता है—और दुर्ग में इस तरह छिपा करता है—जैसे बम में बारूद रहता है।

४. मोह जब कामना वासना की मदिरा पी कर मनुष्यों को आंखों में सुला देता है।

५. संशय तो एक गुप्तचर ऐसा है जो कुतर्क का हथियार ले विश्वास के पांव काट डालता है—और सिर में हां—ना का झूला झुलाता घसीटता चला जाता है।

६. वासना ही माया के राज्य की नींव है। इसके बिना मनुष्य के भीतर भोगेष्णा का वह सोता कौन बहा सकता है जो कभी सूख न सके! यह प्यास कौन जगा सकता है—जो कभी बुझ न सके!

७. अहंकार वासना और आसक्ति के साथ मिलकर संसार को ठगते और उसे कान पकड़ कर कठपुतली की तरह नचा रहे हैं।

कामादिं के विचारों के रंग और स्वाद

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के विचारों से खून के कणों के रंग और स्वाद भिन्न—भिन्न होकर शरीर में रोग अपनी—अपनी प्रकार के—उत्पन्न करते हैं और रंगतदार स्वाद के अनुसार मन की रुचि भी बदलती रहती है। काम का रंग नीला, स्वाद खारा; क्रोध का रंग काला, स्वाद कड़वा,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोभ का रंग लाल, स्वाद खट्टा; मोह का रंग हरा, स्वाद नमकीन; अहंकार का रंग ज़र्द पीला, स्वाद मीठा होगा। अपनी वृत्तियों के अनुसार पदार्थों में रुचि होती है। इनके खाने से फिर वही वृत्तियां पैदा होती हैं, संयम करने से ही दूर भी हो सकती हैं। २७–१–४६

काम, क्रोध, मोह के स्थान

अति तामसिक काम का स्थान मूत्र–इन्द्रिय, क्रोध का स्थान गुदा (मल–इन्द्रिय), लोभ का स्थान नाभि, ये तीनों दूषित होने से नरक के द्वार हैं।

राजसिक रूप में क्रमशः आंख, जिह्वा और नाक हैं। और सात्विक रूप में चित्त, मन और बुद्धि हैं।

काम–क्रोध–लोभ

तामसिक	मूत्रेंद्रिय	गुदा	नाभि
राजसिक	आँख	जिह्वा	नाक
सात्विक	चित्त	मन	बुद्धि

निन्दा प्रभाव

निन्दा सुनने और करने वाले को जब निन्दा में प्रसन्नता होती है–तो अवश्य समझना चाहिए कि उसकी आंख, जिह्वा, मन, कान और बुद्धि पर प्रभाव पड़ रहा है कि अगले जन्म में इन पांचों में न्यूनाधिक सम्बन्ध होगा। जिन के अब इन इन्द्रियों में विकार है–वे पूर्व जन्म में इस दोष के दोषी अवश्य रहे होंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पांच शत्रुओं की उत्पत्ति का समय

मनुष्य बालक के जन्म से केवल लोभ जागृत होता ही है, शेष सब शत्रु सुप्त होते हैं। लोभ पिता बनकर पालक बनता है। कुछ काल बाद मोह को माता जागृत करती है। लोभ का सम्बन्ध नासिका (प्राणशक्ति) से ही है। यही प्राण है। जैसे प्राण आदि से अंत तक जागृत रहता है—ऐसे लोभवृत्ति जन्म से ही जागृत होती है। मोह का सम्बन्ध मन से है। माता मन से प्रेम करती है—और मां ही मोह को जगाती है—फिर बच्चा मां की जुदाई सहन ही नहीं कर सकता।

धीरे—धीरे सब शक्तियां (वृत्तियां) उत्पन्न होने लगती हैं। अहंकार को शब्द जगाता है। क्रोध वृत्ति ऐसे रहती है जैसे त्वचा सारे शरीर को ढांपे रखती है। २३—१—४६

दो प्रकार की अपवित्रता

अपवित्रता दो प्रकार की होती है—एक आध्यात्मिक अर्थात् वह जो चाहे मनुष्य जितेन्द्रिय और धर्मात्मा भी बन जाए—पर परमेश्वर स्पर्श नहीं करता, अहंकार और मोह के कारण। दूसरी सांसारिक अपवित्रता—जो जन्म दिलाती है—काम, क्रोध, लोभ उसके मूल हैं। मोह परमेश्वर से छुड़ाता है, भुलाता है। अहंकार मुकाबला (ईश्वर का) कराता है। इसलिए दोनों अपवित्र हैं—विष्ठा समान। पंच तन्मात्रा या पांच विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में चार तो बाहर से अन्दर चले जाते हैं, पर शब्द जब अपने अन्दर से निकलता है—सब वृत्तियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बाहर ले जाता है। इसलिए जप करते समय या कीर्तन करते समय, शब्द को अपने हृदय, त्रिकुटि स्थान पर ध्यान रखने से, बजाये बाहर वृत्ति को ले जाने के अन्दर ले जाता है और जब हम उनके अर्थों पर ध्यान रखें–तो वह हमारे अन्दर मस्तिष्क में चली जावेगी और भावना करें तो हृदय तक चली जावेगी। २–४–५३

आध्यात्मिक रूप से प्रकृति की विकृति

यह संसार प्रकृति की विकृति कहलाता है। भौतिक रूप में तो आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी के रूप में प्रकृति की विकृति दृष्टिगोचर होती है, परन्तु आध्यात्मिक रूप में इसका विकार क्या है?

राग, द्वेष–देखिए शब्द जो मनुष्य सुनता है–उससे उसे सुख–खुशी मिलेगी, या दुःख नफरत (घृणा)। रूप को देखने पर उससे प्रेम हो जावेगा–या घृणा हो जावेगी। रस के चखने पर या आनन्द मनाएगा, या थूथू कर के नाक भौं चढ़ाएगा। गन्ध सूंघने पर या उसे पसंदीदगी (रुचि) होगी या नाक बन्द करनी पड़ेगी। स्पर्श से भी मनुष्य या तो उससे प्यार करने लग जाएगा–या भयभीत होकर भाग खड़ा होगा। इसलिए यह समस्त संसार जिसमें इन पांचों वस्तुओं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के अतिरिक्त और कुछ नहीं–विकारी है। इसलिए यह विकार उस निर्विकार के पाने का साधन नहीं बन सकेगा। इस विकार की पूजा वर्जित है।

२२–६–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव संस्कार का असर

प्रश्न—जब मनुष्य किसी वस्तु को ग्रहण ही नहीं करता, या त्याग देता है, तो फिर उसे उस वस्तु का स्वप्न क्यों आता है?

उत्तर—यह त्याग दो प्रकार से होता है। दोनों में अहंभाव का अहंकार रह जाता है, उदाहरणतया कोई वस्तु कोई लाया,

(अ) मन तो चाहता है कि ले लूं, पर अपना मान बढ़ाने के लिए उसे ग्रहण नहीं करता, वापस कर देता है। क्योंकि मन में चाह थी, परन्तु इन्द्रियों ने मान प्रतिष्ठा के लिए इन्कार किया था। तो स्वप्न जब आएगा—तो वह वस्तु खाते हुए अपने को पाएगा।

(आ) मन तो नहीं चाहता, त्याग देता है, पर अपने उस त्याग में प्रतिष्ठा मान का भाव बना रहता है—तो स्वप्न में भी जब वस्तु आएगी, तो उसे ग्रहण नहीं करेगा। पर वस्तु सामने अवश्य आवेगी। हां, यदि अहम् उस त्याग में रहा ही नहीं, तो वह वैराग्य है। उस का स्वप्न कभी नहीं आएगा।

(इ) कोई भला पुरुष परस्त्री को सामने आता देख कर आंखें नीचे कर लेता है—इस भाव से कि देखने से उसका आकार न बन जाए, लोक लज्जा से नहीं, अपितु पाप के संस्कार पैदा हो जाने के भय से ऐसा करता है। उस में अपनी इस भली साधना का अहंकार शेष रह जाता है। उसे भी स्वप्न में स्त्री का रूप आ जाएगा—पर वह सचेत होकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरने से बच जाएगा। यदि परस्त्री को देख लेता है और उसका क्षणिक दोबारा आकार भी चित्त में बना लेता है और फिर उसे भुलाने के लिए अपने को धिक्कार करता है और ऐसी आदत बन जाती है–तो वह स्वप्न में देखने मात्र से वीर्यपात कर बैठेगा। यद्यपि कोई स्पर्श और क्रीड़ा न करेगा तदपि दूषित हो ही जावेगा। स्वप्न उसे न आएगा–जिसे सचमुच कामवृत्ति से वैराग्य होगा, या

(ई) जिन का मन क्रीड़ा में विचार रूप से बह जाया करता है इन्हें स्वप्न में क्रीड़ा करते स्वप्न–दोष होता है। जिन का मन स्पर्श में प्रसन्न होता है, इन्हें स्वप्न में स्पर्श–मात्र ही दोष हो जाता है।

आन्तरिक ध्यान में रुकावट क्यों?

प्रश्न–ध्यान में कभी बिना परिश्रम अन्तरवृत्ति हो जाती है, कभी परिश्रम करने पर भी अन्तर्मुखता नहीं होती। सुरत ऊपर जाती और तुरन्त लौट पड़ती है। कभी बदलती रहती है। तामसिक, राजसिक, सात्विक, में–इसका कारण?

उत्तर–साधक मनुष्य को यदि कोई आवश्यकीय कार्य की चिन्ता या चिन्तन सामने हो या मोह ग्रस्त हो जावे अथवा किसी विषय का आवेश आवेग होता हो तब तो कारण प्रत्यक्ष है, परन्तु जब ऐसी बात कोई न हो और फिर ध्यान न लगे तब अन्न का प्रभाव जानना चाहिए। तामसिक वृत्ति से बना हुआ या खाया हुआ, खिलाया हुआ, लाया या परोसा हुआ या राजसिक भाव से बना, खाया, खिलाया, लाया, या परोसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ अपना उतार चढ़ाव करेगा। मिश्रित भावों वाला मिश्रित वृत्तियां उत्पन्न करेगा। भिन्न–भिन्न वस्तुओं का भिन्न–भिन्न स्थानों से संग्रह करके प्राप्त किया हुआ–एक ही भजन के समय में भिन्न–भिन्न रूप दिखाएगा।

तामसिक वृत्ति से क्या अभिप्राय है?

आलस्य, प्रमाद, छल, अन्याय, कंजूसी, भय, स्वार्थ, विवशता, हिंसा आदि वृत्तियों से प्राप्त किया हुआ, जिसमें कमाना, बनाना, खाना, खिलाना, लाना, परोसना सम्मिलित हैं।

प्रतिष्ठा, अहंकार, दिखावा और परलोक में कर्म फल की लालसा आदि हैं।

आहार की सावधानी

एक साधिका अपने योग–साधन में बहुत ऊंची उठ गई थी। एक दिन उसे अपने पेके (पितृगृह) जाना पड़ा। रात्रि को उनके सेवक ने भोजन बनाया, उस साधिका ने खाया। रात को स्वप्न में क्या देखा कि उसने एक तोता लिया, और अपने हाथ से उसका वध किया और चूल्हे पर हांडी में चढ़ा दिया–इतने में उसे जाग आ गई और स्वप्न को याद कर आश्चर्यवत् हो गई कि मैंने तो कभी आयु भर मांस खाया नहीं, और न ऐसा कभी देखा और किया। तो भजन में बैठने पर उसने स्मृति की–कि यह पाप क्यों हुआ? तो सोचते–सोचते भोजन के दोष पर सन्देह प्रतीत हुआ। उठने पर पूछताछ की तो पता लगा–कि सेवक ने उसके आने से पहले घर वालों के लिए एक मुर्गा अपने हाथ से वध करके, चढ़ाकर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको खिलाया था। और उस साधिका के आने पर–उसने ही निरामिष भोजन बनाया। वही रात, वही चूल्हा, वही आदमी बनाने वाला और लगभग वही बरतन साफ करके प्रयोग किये गये थे। तब उस साधिका ने दूसरे के हाथ के भोजन को छोड़ दिया, यह है स्वप्न में प्रभाव। १७–२–४६

साधकों को चेतावनी

जब कोई गृहस्थी सेवा–अतिथि सत्कार खान–पान आदि से करता है तो अतिथि की इच्छा के अनुकूल है–पर उसकी दृष्टि और मन में भार या दोष रहता है, तो साधक को भजन में भार प्रत्यक्ष रहता है। भजन करते ही भार मालूम होता है–प्राण स्थूल हो जाता है। और जब तक वह भोजन हजम होकर निकल न जावे–तब तक प्राण स्थूल और मन भारी शिथिल रहता है। बुद्धि में आवरण और वाणी में नीरसता आ जाती है। इसलिए साधक को बहुत सावधान रहना चाहिए।

परमात्मा की आत्मा से कब रूठ मालूम हो? जब मन में विचार झूठ हो, परमात्मा की आत्मा से कब फूट होती है? जब बुद्धि में विचार लूट हो (अन्याय)। २२–१–४६

सन्तोष और प्रेम की तुलना

मनुष्य का मन भूखा हो तो, अन्न बहुत खा जाता है। यदि मन तृप्त हो तो अन्न बहुत कम खाता है। पशु कभी तृप्त नहीं होता–क्योंकि मन का भूखा होता है। मन को तृप्त करने वाली दो वस्तुएं हैं–संतोष और प्रेम। सन्तोष तो बिना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
ज्ञान नहीं आता, पर प्रेम स्वाभाविक आने से सम्बन्ध रखता है। सन्तोष की अवस्था में तृप्त होना—प्राप्त वस्तु पर इकतरफा (सन्तुष्ट होना) करना है। यह सीमित वस्तु है। परन्तु प्रेम की दशा में तृप्ति असीम और अदृष्ट है। वस्तु बहुत रखी हो—पर तृप्त हो जाना थोड़ी से है, यह प्रेम का जादू है। सन्तोष वर्तमान भूख को मिटाता है—प्रेम आने वाली भूख को भी मिटा देता है। सन्तोष अपने में रहता है—प्रेम अपने से बाहर भी दूसरों में जा समाता है। सन्तोष में जितनी है—वही पर्याप्त है। परन्तु प्रेम में जितनी है—वही दूसरों के लिए भी पर्याप्त हो जाती है। सन्तोष में शक्ति है—प्रेम में बरकत (वरदान) है।

भिक्षाटन में प्रायश्चित्त

गृहस्थी का प्रायश्चित :— कई अवसरों पर किसी साधु के मधुकरी मांगने पर कोई मनुष्य क्रोध या अहंकार से बर्ताव करता है, परन्तु जब साधु की सहनशीलता या ओज, तेज को दृष्टिगोचर करता है तो तुरन्त पश्चात्ताप मन में करने लग जाता है और फिर हाथ जोड़ कर नम्रता और श्रद्धा भाव से तो देता है वह अन्न अपवित्र नहीं रहता, क्योंकि देने वाले की पाप वृत्ति दग्ध हो जाती है और उसका अपमानजन्य पाप उसी समय का भी दग्ध हो जाता है।

(अ) साधु का प्रायश्चित्त—साधु यदि देने वाले की वृत्ति के समान हो जाता है तो उसकी विशेषता नहीं रहती।

(आ) यदि साधु दाता के क्रोध या अहंकार को वाणी के उपदेश रूप से समझाता है और उसे नम्र कर देता है तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे उस समय उस दाता के घर से लेना चाहिये। शर्त यह है कि वह स्वयं शांतचित्त रहा हो, उसकी अपनी मनोवृत्ति में अहंकार या क्रोध, अपने अपमानित होने के लिए, पैदा न हुआ हो। और यदि अहंकार या क्रोध आ गया हो तो तुरन्त अपने अहंकार या क्रोध को मारने के लिए उसे लेना पड़े तो यह अपना प्रायश्चित्त है, परन्तु इससे बढ़िया प्रायश्चित्त यह होगा कि दाता को तो उपदेश से नम्र कर दे और अपने लिए शांत होकर उस समय अनशन का दण्ड दे।

साधु की मधुकरी का भाव है अपनी कमाई, अदृष्ट भोग, स्वाद की इच्छा से रहित, सादगी, बिना बोझ निर्वाह करे, उसी के भौतिक और दैविक सम्बन्ध से। और आध्यात्मिक रूप है अहंकार और भेद द्वेष रहित, सहन शीलता।

(ई) साधु जब किसी के अपमान करने पर सहनशील रहता है तो दूसरे को अपने प्रभाव से नम्र बना देता है और फिर अपने अन्तःकरण में उसे प्रसन्नता हो जाती है कि मैंने अपने अहंकार पर विजय पा ली है। तो यह उसका अहंकार राजसिक भी हो सकता है और सात्विक भी। यदि राजसिक होगा तो दूसरे समय वह जरूर गिर जावेगा। यदि सात्विक होगा तो बस फिर दृढ़ हो जावेगा। १३–२–४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

।। ओ३म् ।।

चतुर्थ पीठिका

आध्यात्मिक रहस्य प्रकरण

इन्द्रियों की रहस्यमयी रचना

पशुओं के कान आंख आदि बहुत संकुचित सीमित पर्दों से बने हैं, प्रभु ने उनमें गहराई नहीं रखी, माथे के स्थान पर थोड़ी–सी दूरी पर समाप्त हो जाते हैं। इसलिए वे अधिक देख सुन नहीं सकते, गहराई न होने से स्मृति और टिकाव नहीं कर सकते।

कान पशुओं के लिए हिलते प्रभु ने बनाए–एक तो सज़ा का चिह्न, दूसरा जितना किसी पशु को भय अधिक होता है–उतने उसके कान अधिक हिलते रहते हैं, बार–बार हिलाने में उन्हें अपनी रक्षा के लिए पता लगता रहता है आवाजों का। वे आती और जाती हैं पर जब कोई आवाज उनके मतलब की होती है–अर्थात् हानि या लाभ की, तब तुरन्त उनके दोनों कान खड़े होकर एक हो जाते हैं–और उस आवाज को शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रभु देव की अद्‌भुत लीला है।

मनुष्य के आंख, कान आदि बहुत गहरे बना दिए हैं इनका सम्बन्ध गुफाओं–हृदय गुफा, मस्तिष्क गुफा तक है।

गुहा का अर्थ गुप्त ज्ञान भी है। ज्ञानेन्द्रियां जितनी गहरी बनाई हैं, अगर मनुष्य आंख कान को समीप कर देता है तो दूर तक देखता सुनता है। जैसे आंख पर अणु–वीक्षण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(खुर्दबीन) लगाने से छोटी चीज बड़ी मालूम होती है—अर्थात् उसका स्वरूप देख लिया जाता है। दूर—वीक्षण (दूरबीन) लगाने से बहुत दूर की वस्तु दीखने लगती है—अर्थात् दूर वाली निकट हो जाती है, जब आंख को यन्त्र के निकट कर दिया जाता है। ऐसे कान के यन्त्र से दूर की आवाज निकट सुनी जाती है। जब मनुष्य आंख कान में दूसरे ज्ञान—ज्ञानस्वरूप प्रभु को बसा लेता है, तो बहुत गहरा, बहुत दूर बहुत सूक्ष्म जानने लग जाता है। बाहर के सुराख बाहर सीमित हैं, अन्दर के सुराख गुफा वाले व्यापक रूप से असीम हो जाते हैं। १८—५—४६

कान और नासिका क्यों खुली रहती हैं?

ज्ञान का सम्बन्ध कान से, कर्म का सम्बन्ध प्राण से है—ये दोनों इन्द्रियां प्रभु कृपा से सदा खुली रहती हैं। आंख और मुख की तरह बन्द नहीं होती। ज्ञान का भान कान से होता है और कर्म प्राण की चेष्टा से किया जाता है। ज्ञानी पुरुषों को प्रभु से स्वतः सिद्ध प्रकाश मिलता है और कर्मयोगी को ज्ञानी से प्रकाश मिलता है।

महापुरुषों का जीवन ईश्वर भक्ति, शिव संकल्प और इन्द्रिय संयम से महान होता है। उसका मध्यनाभि शिव संकल्प ही है। शिव संकल्प के बिना कोई भी मनुष्य इन्द्रिय संयम नहीं कर सकता और बिना इन्द्रिय संयम के ईश्वर भक्त नहीं बन सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाश और विकास कैसे?

(अ) प्रत्येक मनुष्य के इर्द गिर्द विनाश और विकास के परमाणु घूमते रहते हैं और ताक में रहते हैं कि वे अन्दर घुस कर अपना कार्य कला दिखाएं। इन से सावधान रहो, यही विवेक है।

(ब) सुराखों (छिद्रों) के द्वारा घुसते हैं। प्रभु की लीला क्या अद्‌भुत है–कि जितना जिस छिद्र को अधिक भयानक समझा, उतना उसे बहुत बारीक (सूक्ष्म) बना दिया–ताकि मनुष्य की सुरक्षा और बचाव रहे–मुख के छिद्र से नाक का, कान से आंख का, आंख से भी कान का सूक्ष्म बना दिया। ऐसे उत्तरोत्तर इसकी सुरक्षा करनी चाहिए।

धर्म की लाग का प्रभाव

मनुष्य में जन्म जन्मान्तर के पाप मन्दकर्मों के संस्कार जमा (एकत्र) हैं। वे संस्कार मनुष्य को गिराने में तत्पर रहते हैं। पर जिस मनुष्य में धर्म की लाग है–वह लाग उसे सदा नहीं, तो कभी–कभी तो गिरने से बचा ही देती है। उत्तेजना रुख पर तुरन्त होश में ला देती है, कभी कर बैठने पर पश्चात्ताप करा के आगे के लिए सावधान कराती है। धर्म की लाग श्रवण से उत्पन्न होती है। मनन से विकास, उसे बार–बार अमल में लाने और स्मरण रखने से बलवान् हो जाती है, जो पाप–वृत्ति को फटकारती और भयभीत करती रहती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि भेद और फल

पशु तो न देखता है, न सुनता है। कान आंख रखते हुए भी अपनी खेती उजाड़ लताड़ देता है। मनुष्य जब भी देखता है, सुनता है, इसके कान आंख में अपनापन–स्वार्थ समाया होता है। देव की आंख से भगवान देखता है, कान से भगवान सुनता है। देव बनने वाला ही देव लोक में उड़ान कर सकता है।

नेत्र दाएं बाएं–दाईं आंख संसारी और बायां कान संसारी है। बाईं आंख आत्मिक और दायां कान आत्मिक है। दाईं आंख में जमदग्नि, बाईं आंख में विश्वामित्र। दाएं कान में भारद्वाज और बाएं कान में गौतम ऋषि का वास है। ध्यान–योग में जब साधक उन्नत होने लगता है–तो उसे प्रकाश बाईं आंख से दिखाई देता है और शब्द नाद दाएं कान से सुनाई देता है–दाईं आंख में **साधक के अन्धकार** शून्य होता है, और बायां कान खाली। जब कामी पुरुष आंख चुरा कर देखता है तो बाईं आंख बन्द कर लेता है। दाईं से अपनी अश्लीलता प्रकट करता है। जब मनुष्य को अहंकार आता है–तो बायां कान लाल और खड़ा–अकड़ा जाता है। ५–१०–४६

कानों और वाणी सम्बन्धी चेतावनी

१. अपने कानों को दूसरों की वाणी का मोहताज (पराधीन) न बनाओ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. अपनी वाणी को दूसरों के कानों को आकर्षित करने वाला बनाओ। ऐसा बनाओ कि दूसरों के कान तुम्हारी वाणी के शासन में अपना तन मन देना पसन्द करें।

३. कान अपने लिए हैं–वाणी दूसरों के लिए है। प्रभु के इस नियम का आदर करो।

४. वाणी का देवता जल है–वरुण है। यह मिलाती भी है–जुदा भी करती है। जैसे जल मिलाता भी है और जुदा भी करता है। कैसे? गन्दगी भी करता है और पवित्र भी करता है।

एक दूसरे से प्रीति कब होती है?

जब किसी गुण या किसी कर्म में अनुकूलता हो, परन्तु यह प्रीति पूर्ण नहीं होती है, अंशमात्र ही होती है। स्वभाव की प्रीति इससे अधिक होती है। पर जब पूर्ण गुण, कर्म, स्वभाव और उद्देश्य एक हों–तब पूर्ण प्रीति होती है।

योगी और रोगी की उदासीनता के लक्षण

जब किसी रोगी या योगी को–जो अपने प्रिय जन का अपने पास बैठना, बात करना, दर्शन–स्पर्शन करना न भावे तो समझना चाहिए कि मानसिक–क्रियाएं सूक्ष्म शरीर की शक्ल में परिवर्तन कर रही हैं, इस लोक से परलोक की ताक लगा रही हैं। योगी के लिए तो भौतिक क्षेत्र में आध्यात्मिक लोक में, और रोगी के लिए शरीर से परलोक में होता है। इसका कारण दो प्रकार से होता है–एक कठोरता, दूसरी समता से। जिस प्रिय जन की बोल चाल दर्शन, आना जाना पहले भाता था और अब मन कठोर हो जावे, तो अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में दोष होता है। प्रिय–जन के दोष को देख कर उचाट हो जाना।

और समता रहती है जब वैराग्य हो जावे, कोई आवे या ना। उस से दिलचस्पी नहीं रहती। पर रोगी में समता नहीं रहती, कठोरता का दोष अपने में आ जाता है। २–२–४६

योगी और भक्त, भिन्न दृष्टिकोण

एक योगी इस शरीर को मल–मूत्र का थैला समझ कर उसके अन्दर खून, पीप, हड्डी को साक्षात् करके उससे घृणा करता और दिल हटाता है। ऐसे सब शरीरों में ध्यान करता और हृदय को कठोर कर के वैराग्य प्राप्त करता है। दूसरा–ईश्वर भक्त इस शरीर को ब्रह्म का मन्दिर जान कर इस को अन्दर बाहर पवित्र करता है–वह सब शरीरों में चेतन आत्मा की विराजमानता देखकर सब से एकता और प्रेम जोड़ता है। दोनों का लक्ष्य केवल प्रभु से ही प्रेम करना होता है–जो निर्विकार निर्दोष है। एक सब वस्तुओं में दोष देखता, उन से दिल हटाता जाता है। दूसरा सब में प्रभु को समझता, और उन में गुण देखता, गुण संग्रह करता जाता है।

प्राण सम्बन्ध के चिह्न

जब कोई किसी के वियोग या रोग या शोक में, या संयोग में दुःख या प्रेम से रो पड़ता है–तो समझना चाहिए कि उनका प्राण सम्बन्ध है। रोना हंसना यह सब प्राण की चेष्टाएं हैं। लोग इसे खून का सम्बन्ध कहते हैं। वास्तव में व्यान–प्राण द्वारा ही खून गति करता है, और व्यान द्वारा ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेष्टाएं और क्रियाएं उत्पन्न होती हैं। जिनका प्रकट में खूनी–रिश्ता है–वह तो सुख दुःख में रोना हंसना प्रकट ही है, परन्तु जब खूनी–रिश्ता न हो और फिर भी घनिष्ठ सम्बन्ध की तरह रोना, खुश होना हो–तो समझना चाहिए पूर्व जन्म में घनिष्ठ खून का रिश्ता था, या अगले जन्म में अवश्य होना होगा।

कहा–पर करता क्यों नहीं?

मनुष्य जैसा या जो कहता है–वैसा करता क्यों नहीं? कारण यह कि कहने और करने में अन्तर है। जिस से कहता है या जो कहती है अर्थात् वाक् (वाणी) तो वह स्वयं करने वाली नहीं, अन्यथा तुरन्त कर लेती। कहने और करने में और दो साधन हैं–एक जानना दूसरा मानना। इसलिए जो वाणी कहती है–उसे बुद्धि और मन वैसा माने तो कर (हाथ) या काया उसे वैसा कर पाये। यही इसमें अड़चन है।

२३–६–४६

गणित विद्या से आध्यात्मिक शिक्षा

विद्याओं में गणित–विद्या वह विद्या है जो आध्यात्मिक रूप को भी बहुत स्पष्ट बतलाती है। जैसे हम उदाहरण देते हैं–परमेश्वर एक है–और परमेश्वर सब में है, एक का अंक सब अंकों में है। परमेश्वर से सब बने हैं, ऐसे सब एक से बने हैं। जैसे सत्य का उदाहरण देना होता है–तो कहते हैं–जैसे दो और दो चार होते हैं, कभी तीन या पांच नहीं-होते, सब देशों में दो और दो चार कहलाते हैं। ऐसे परमेश्वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो गणित विद्या में जो आरम्भ में सिखाया जाता है—वह है—जमा, घटाई, गुणा और भाग—बस चार विधियों पर सारा गणित टिका है। आध्यात्मिक क्षेत्र में—क्या जमा करें, क्या घटाएं, किस से गुणा करें, और किससे भाग दें?

+अपने में नेकियों (भलाइयों) को जमा करो,
—अपने से बुराइयों को घटा दो,
परमेश्वर के गुणों से गुणा करो और
अहम् मम को भाग करो।
यही मार्ग है आध्यात्मिक, मुक्ति प्राप्ति का। ४—१२—४८

मनुष्य की विचित्रता

पशु पक्षी परतन्त्र हैं, जड़ देवता यन्त्र हैं, मुक्त जीव स्वतन्त्र हैं—शेष रहे मनुष्य—इन्हें क्या कहें?

पशु पक्षी तो अपना जन्म भुगत कर मनुष्य बन जाएंगे। यदि मनुष्य ने ऐसा कर्म न किया कि देव बन जाए, तो इसने क्या किया?

पशु तो अपनी योनि में रहते मनुष्य नहीं बन सकता, पर प्रभु की कितनी अपार दया है कि मनुष्य अपनी योनि में रहते हुए देव बन सकता है।

शिशु माता—पिता के आश्रित होता है, माता—पिता स्वयं उसकी चिन्ता रखते हैं। गृहस्थी अपने ऊपर आश्रित रहता है स्वयं चिन्ता करता है। वानप्रस्थी प्रभु के अर्पण होता है। प्रभु उसकी स्वयं चिन्ता करता है। संन्यासी सार्वभौम होता है सब विश्व उसके लिए होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी का बल

मनुष्य की वाणी किसी न किसी बल के आश्रय बोलती है। धनी जब बोलता है–तो उसका लब–ओ–लहजा (भाषण रीति) ऐसा होता है कि वह धन–बल के आश्रय बोल रहा होता है। विद्वान् अपनी विद्या–बल के आश्रय, बुद्धिमान् अपनी बुद्धि बल के आश्रय, शासक या पहलवान अपने जोर–बल के आश्रय, बिना बल वाणी बोल नहीं सकती। साधारण मनुष्य प्राण बल से बोलते हैं। और प्रभु आश्रित को तो कोई भी बल आश्रय नहीं, अपने प्रभु के आश्रय से बोल सकता है। अन्य से नहीं। २६–३–४६

आज नया सम्वत् लगा है। कोई व्रत लेना चाहिए जो किसी व्यसन से मुक्त कर दे या प्रभु के समीप करने में सहायक हो। नया सं. २००६ ३०–३–४६

ईर्ष्या–स्पर्धा

स्पर्धा सात्विक है, और ईर्ष्या तामसिक होती है। जब कोई मनुष्य किसी दूसरे को उन्नत देखकर कह उठता है कि यह मुझ से क्यों बढ़ गया, या बढ़ रहा है तब यह ईर्ष्या तामसिक होती है। इससे कठोरता और घृणा उत्पन्न होती है और मूर्खता से बदनाम होता है। जब कोई मनुष्य दूसरे को उन्नत देखकर मन में प्रसन्न हो कर धारणा करता है कि मैं भी इस जैसा बनूं या इस से बढ़ जाऊं, तब यह सात्विक है। इससे श्रद्धा और प्रेम पैदा होता है–और ज्ञान से नेक नाम होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा का आत्मा में प्रतिबिम्ब

मित्र और शत्रु के लिए मोटा असूल प्राणी का प्राणी से सही परिचय–

१. जो तुम में है, वह मुझ में है, जो मुझ में है, वह तुम में है।

२. जो मैं हूं, सो तू है, और जो तू है, सो मैं हूं।

३. जैसा तू मेरे लिए है, वैसा मैं तेरे लिए हूं।

४. जिस भाव से तू मुझसे एकता चाहता है उसी भाव से मैं तुझ से एकता चाहता हूं।

५. आंख और वाणी, चेहरा और बुद्धि से धोखा हो सकता है। पर आत्मा को आत्मा से धोखा कभी नहीं हो सकता। वह पूर्ण सत्य प्रकट करती है। १५–६–४८

प्राणियों में पूर्ण एकता असम्भव

संसार में कभी दो प्राणी अत्यन्त समीप होने पर भी पूर्ण एकता नहीं रख सकते। हां–जहां कहीं भी एकता पाई जाती है, वहां किसी अंश में ही एकता होगी। चाहे गुण कर्म में हो, चाहे कर्म या स्वभाव में, पति–पत्नी में हो या पुत्र, पिता–माता में, या गुरु–शिष्य, या मित्र–मित्र में। पूर्ण एकता न होने का यह कारण है कि सब सम्बन्ध, समीपता के, अहंकार ज्ञान से होते हैं। उस देखी जाने वाली एकता में, अहंकार से रहित होना नहीं होता–अपितु अहंकार की एकता होती है और वह एकता अहंकार के काल के अधीन रहती है। "पूर्ण परमात्मा में स्वरूप से अर्पित हो जाने में ही पूर्ण एकता है" पूर्ण एकता तो पूर्ण ही में हो सकती है–इसमें अहंकार की न एकता होती है, न अहंकार रहित–अपितु बल के स्वरूप से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्पित होना होता है। वह पूर्ण केवल परमात्मा ही है—जिसके अर्पित आत्मा स्वयं होती है। जब आत्मा अर्पित हो गई—तब अपनी सब सम्पत्ति और शक्ति सहित अर्पित हो गई। उस एक के अर्पित हो जाने से सब के लिए एक—सा हो जाता है।

जान और ज्ञान का अन्तर

कितना आश्चर्य है कि किसी पदार्थ के जानने के लिए विद्या की आवश्यकता है—पर मनुष्य प्रायः पदार्थों को तो जानता है पर उसकी विद्या को नहीं, केवल मात्र एतबारीइलम अर्थात् विश्वास या श्रद्धा रख कर जानता है। सब लोग बच्चे और बूढ़े एक जैसा जानते हैं। फलां वृक्ष आम का है यां यह संतरा है—पर कैसे और क्यों यह आम है और यह संतरा है यह सब नहीं जानते। हम साधारण लोग बाह्य ज्ञान—वह भी तुच्छ मात्र रखते हैं।

ब्रह्म और माता की सेवा निरपेक्षता कब, और क्यों?

प्रश्न— २१—६—४८

१. जहां कोई किसी की सेवा से प्रसन्न नहीं होता, और न सेवा करने से अप्रसन्न नहीं होता, वह क्या अवस्था होगी? और कारण क्या होगा?

२. जहां किसी की सेवा किए बिना, ऐसे ही उस से प्रसन्न रहता हो। कारण क्या?

उत्तर—

१. उसे जब उसकी सेवा की आवश्यकता ही न हो—उदाहरणरूप से—प्रभु मनुष्य से! कारण—परिपूर्णब्रह्म की

२. जब उसमें अपना मम और अहम् हो। उदाहरणरूप से—माता नवजात शिशु से—कारण प्रेम।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव की अल्पज्ञता (मुक्ति में भी)

जीवात्मा अल्पज्ञ है। किस बात में अल्पज्ञ है? जब परमेश्वर के दर्शन कर ले तब भी अल्पज्ञ है? हां! अल्पज्ञ ही रहेगा, मुक्ति में भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता। आत्मदर्शी ऋषि बन जाए—वह यह नहीं जान सका कि प्रभु लीला कैसी है? हिरण खाता घास है—कस्तूरी कैसे बन जाती है, जो साठ रुपये प्रति तोला बिकती है। वही घास भैंस भी खाती है। सीपी में पड़े तो जल की बूंद, और बन जाए हजारों रुपये का कीमती मोती और केले पर पड़े वही वर्षा, तो बना दे कर्पूर सुगन्धिल और शीतल।

मनुष्य खाता तो गेहूं, जौ, जुआर है—पर कैसे वह प्रभु खून, चरबी, मांस और हड्डी बना देता है। गाय खाए घास बनाए दूध—मक्खन। डाक्टर महोदय यह तो कह सकते हैं—इतने दिन में खून बनता है, इतने दिन में मांस, हड्डी। और यह भी बता सकेंगे कि बहुत ही सूक्ष्म भाग या दिव्य भाग की उत्तरोत्तर धातु बनती है—पर किस प्रकार की रासायनिक क्रिया हो रही है—नहीं बता सकेंगे।

सुधार की मूलभूत प्रेरणाएं

जो अपने भविष्य का कल्याण, और वर्तमान के अपयश, देवताओं की आज्ञा का भय अनुभव नहीं करता। उसका सुधार कैसे हो सकता है? २६—३—५३

मनुष्य की बहिर्मुखवृत्ति आत्मानुभव में बाधा

मनुष्य कितना आश्चर्य है— कि शरीर में जो व्यापार हो रहा है—खून, मांस, हड्डी का बनना और संस्कारों का आना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाना बनना, सब आत्मा की सत्ता से हो रहे हैं, पर आत्मा को ज्ञान ही नहीं। संसार का सब कुछ देखता है—पर अन्दर रहते हुए भी अन्दर के कार्यों को नहीं देख सकता। और जब आत्मा निकल जाती है—तब किसी डाक्टर की शक्ति नहीं, कि मुर्दा के बन्द हुए मुंह को खेल सके, गुदा से पिचकारी प्रविष्ट कर सके। भले ही वह चीर फाड़ तो कर सकता है—पर इन सुराखों को नहीं खोल सकता। आत्मा के होने से सब कार्य आसानी से होते रहते हैं। ऐसी कोई शक्ति इस आत्मा में भी तो है। वह क्या शक्ति है, इसका ज्ञान नहीं।

२५—३—२३

सुन्दरता और खूबसूरती में भेद

प्रभु का जो सौन्दर्य है वह शिव और सत्य है—पर मनुष्यों में पुरुष जाति में खूबसूरती रंगत आदि की है। वह सामान्य रूप से बेवफाई, लालच, काम और बददयानती के अवगुण को न्यूनाधिक साथ रखने वाली होती है। हां—वह पुरुष प्रभु के सौन्दर्य की तरह शिव और सत्य होगा—जो प्रभु भक्त होगा। खूबसूरत दुनियादार सत्य और शिव का गुण रखने वाला बहुत विरला होगा।

सात्विक सौन्दर्य तो वह है जिसमें सत्य और शिव हो। जिसमें ये दोनों नहीं—वह तामसिक बाहरी सूरत (आकार) का है, रंगत का है, दिखावा है और छलावा है, उसका आकर्षण नाश करने वाला होता है। जिस में केवल सत्य होता है—वह राजसिक अर्थात् ब्रह्मचर्य—वीर्य रक्षा, बल का सौन्दर्य राजसिक है। यह यश कराने वाला होता है। और जिसमें शिव—दूसरे का कल्याण भी हो और सत्य भी हो—वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है आत्मा का, सदाचार का सौंदर्य। इस से आकर्षित मनुष्य इस सौन्दर्य से गुण ग्रहण कर पाता है।

वेश्या का सौन्दर्य–तामसिक–नाशक है। क्षत्रिय का राजसिक, ब्राह्मण–ब्रह्मवृत्ति पुरुष का सात्विक, कल्याणकारी है।

अन्दर के संग्राम में अन्दर का बल

मनुष्य सांसारिक संग्राम में बाहर के शत्रुओं के साथ लड़ने में हथियारों का प्रयोग करता है–और जब तक क्रोध में न आवे–तब तक लड़ ही नहीं सकता। परन्तु काम क्रोध आदि अन्दर के वीरों से कैसे लड़े? प्रभु का बल ही इन को जिता सकता है। इस बल के अस्त्र–शस्त्र हैं शम, दम, विवेक, वैराग्य आदि सात्विक सम्पत्ति या हथियार। भक्त इसीलिए ही भक्ति, नमस्कार और पूजा के द्वारा प्रभु शरण पकड़ता है कि उसे यह सम्पत्ति या बल मिले। सामवेद पूर्वार्चिक मन्त्र १२ (दशमी २, मन्त्र २)

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम्। यजिष्ठमृञ्जसे गिरा।।

दीनता प्रभु को भी अधीन कर देती है

भगवान् को भक्त किस वाणी से प्रसन्न करता है? दीन वाणी से प्रसन्न करता है। जिन लोगों का मन विषयों के अर्पण है उनकी वाणी कभी दीन नहीं हो सकती। जब भी दीन वचन बोलेंगे, तब ही वह स्वार्थ से भरे हुए होंगे। जब मन विषयों से उपराम हो जावे–तो भगवद् अर्पण हो सकता है। तब वाणी में जो दीनता होगी–वह प्रभु को प्रेम से हिला देगी–और अपने सम्मुख खींच कर बिठा दिखावेगी।

भक्त की भगवान् से प्रार्थना किसलिये?

भगवान् का भक्त, भक्ति यज्ञ में भगवान् से प्रार्थना क्यों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है? इसलिये कि हमारी इन्द्रियां विषय के अधीन न बनें। रक्षा के लिये बुलाते हैं, अपनी रक्षण–शक्तियों के साथ यहां पधारिये।

भावना अनुसार भक्ति का फल

प्रभु के गुण अनन्त हैं। उपासक के अन्दर अपने उपास्य देव के गुण आते हैं। यही उपासना का फल है। पर सब गुण उपासक में नहीं आते–अपितु जिस भावना से मनुष्य भक्ति करता है–वैसे–वैसे ही गुण प्रभु उसे प्रदान करते हैं जिस से कि वह अपना स्वार्थ सिद्ध कर सके। जो भक्त लोग सुख भोग के भाव से भक्ति करते हैं–उन्हें प्रभु उदारता और दया का गुण देकर दानशील बनाता है। और जो मान प्राप्त करने, नेता और बड़ा बनने की इच्छा से उपासना करते हैं–उन्हें तप, त्याग और सेवा का गुण प्रदान करते हैं, जिससे वे जनता में देश, समाज या जाति में मान पाते और बड़े बन सकते हैं। और जो भक्त प्रभु दर्शन के लिए ही उपासना करते हैं–तब प्रभु उन्हें शम, दम, विवेक, वैराग्य आदि गुणों से भरपूर कर देते हैं, जो उन्हें विषय वासनाओं से निर्मूल करके उस प्रभु को मिला देते हैं।

ईश–गुण–विचार

मनुष्य जब यह समझने लग जाता है कि प्रभु दयालु है तो उसका प्रेम प्रभु में बनता है। पर दयालु स्वभाव जानने से प्रमाद भी आ जाता है और इससे पाप करने में उद्यत हो जाता है। और जब उसे प्रभु का न्यायकारी स्वरूप मालूम हो जाता है–तो वह भयभीत होता है, पाप करने से डरता है। इस प्रेम और भय की लड़ाई में ही रह जाता है। पर जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि प्रभु तो कर्म फल प्रदाता है तो फिर पुरुषार्थ की शक्ति उसमें आ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है। क्योंकि कर्म फलदाता का निश्चय उसे बहुत पुरुषार्थ कराकर, उसे बढ़ा और नेक नाम (प्रतिष्ठित) बना देता है तो उसे अहंकार, अपने पुण्य कर्मों का हो जाता है, अपने मन का, धन, जन, विद्या, तप, भक्ति आदि का।

और जब उसे सर्वशक्तिमान् प्रभु की प्रतीति होने लगती है तो अभिमान अहंकार उसका चूर हो जाता है।

प्रभु के ये गुण—दयालु न्यायकारी कर्म फलदाता और सर्व शक्तिमान् एक दूसरे के साथ अन्योऽन्याश्रित की भांति जुड़े हुए हैं। यदि कर्म फलदाता होता और न्यायकारी न होता तो सिफारिश भी मान लेता। और यदि न्यायकारी होता और सर्वशक्तिमान् न होता तो उसे स्वयं भय रहता और किसी को कर्म फल कैसे पहुंचा सकता? और यदि भयभीत कराने वाले गुण होते; हकूमत शासन के गुण रखता तो इस से, उससे प्रेम कोई न रखता। अभय पद कोई न प्राप्त करता। मनुष्य उससे दूर रह जाते, उसके समीप जाने की इच्छा न करते—पर वह दयालु है माता—पिता से भी अधिक दयालु है इसलिए मनुष्य उसकी समीपता चाहता है और प्रेम का पात्र बनना चाहता है, प्रेम करता है—ये गुण सब प्रभु में हैं। यदि वह सर्वसाक्षी न हो तो कैसे न्याय करता और कर्म फल देता? इसलिए वह सर्व साक्षी भी हैं। सर्व साक्षी तो वही हो सकता है जो सर्व व्यापक हो। सर्व व्यापक तो आकाश भी है पर प्रभु सर्व अन्तर्यामी है। अन्तर्यामी तो हो, पर किसका, किस प्रकार, किस मात्रा के फल से सुधार होगा? इस लिए वह सर्वज्ञ भी हैं। नस—नस नाड़ी—नाड़ी में जो वासना गुप्त रहती है, जीवात्मा अपनी जिस वासना को नहीं जान सकता, वह भी प्रभु के ज्ञान में है। इसलिए मनुष्य को अपना जीवन सुधारने के लिए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे पहले प्रभु के कर्म फलदाता स्वरूप का अध्ययन और विचार करना चाहिये, करते रहना चाहिए। और उसके साथ न्यायकारी और सर्व शक्तिमान स्वरूप का। इससे पाप वृत्ति का जोर कम होता जाएगा और पुण्य वृत्ति जगती जाएगी। ज्यों–ज्यों पुण्य वृत्ति जगे और सुख सम्पत्ति होने लगे– त्यों–त्यों प्रभु के दयालु स्वरूप का हर समय भान करने से उसमें भक्ति के अंकुर फूट निकलेंगे और अंत में स्रोत बह जायेगा।

विचार के प्रकार (साधन) साधना–तप

साधारण मनुष्य अनेक प्रकार की घटनाओं को देखकर भी भूल जाता है, फिर कैसे अध्ययन और विचार करे? तप से। जब तक मनुष्य तपोमय जीवन न बितावे उसे ज्ञान और भान नहीं होता। तप से प्रभु की कृपा बरसती है। मोटा तप तीन प्रकार का है–शरीर, वाणी और मन का–मन का तप तो अन्तिम है, शरीर का साधारण है, इसलिए वाणी का तप अपनाना चाहिए। यह मध्य है, नाभि है। इसके सिद्ध होने पर लक्ष्य सरल हो जाता है। सामवेद पूर्वार्चिक : मन्त्र २० **आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवि।।** में आया है कि जिस दिन भक्तों और ज्ञानियों की तपश्चर्या से परमेश्वर प्रसन्न होते हैं उसी दिन, उसी क्षण उस व्यापक परम पुरुष के अति प्रदीप्त प्रकाश का भक्त और ज्ञानी अनुभव करते हैं।

जब वाणी का तप सिद्ध हो जाएगा–मानों वह वाणी परमेश्वर के प्रकाश से बोल रही होगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मफल तो बराबर, पर भक्त तृप्त और सन्तुष्ट पूजा हृदय से, पूजा मन से

परमेश्वर कर्मफल दाता—फल तो सब को कर्मानुसार देता है। भक्त और अन्य के कर्मफल में जो कर्म तो करता हैं पर प्रभु से प्रेम नहीं करता, क्या अंतर रहता है?

भक्त को जब कर्म फल देता है दण्ड या सुख, तो वह दोनों में तृप्त और सन्तुष्ट रहता है, पर अन्य पुरुष को जब फल मिलता है तो उसकी तृप्ति नहीं होती। अच्छे फल सुख में उसे तृष्णा और अहंकार बढ़ता है और दुःख फल भोग में उसे शोक और क्रोध बढ़ता है, क्योंकि भक्त के लिए वेद कहता है—

सामवेद पूर्वार्चिक : मन्त्र २७ **अपाँ रेताँसि जिन्वति।**

भक्त भगवान् की पूजा मन में भरपूर श्रद्धा भक्ति से करता है। अन्य लोग हृदय की भाव भक्ति से पूजा करते हैं। भाव हृदय में रहता है—श्रद्धा मन में।

आत्मदा बलदा तो केवल भगवान्; न कि अन्न

भूख अन्न को खाती है और अन्न भूख को खाता है। इस अन्न से शरीर में बल आता है। जीव में बल नहीं आता। इस अन्न को प्राण खाता है। यह प्राण की भूख कहलाती है, पर मन की भूख को यह अन्न नहीं मिटाता। मन की भूख मिटती और तृप्त होती है—शम, दम, शिक्षा आदि से, तब जीव में बल आता है। शरीर का स्वामी और अन्न का स्वामी पृथ्वी है। जीव का स्वामी और शम, दम आदि का स्वामी परमात्मा आप है। आत्मा का बल दाता प्रभु आप है—सो वह इस अन्न द्वारा देता है न कि खाये जाने वाले नाशवान् पदार्थ—अन्न से।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्य संचय में जागरूकता क्यों?

पुण्य क्या है—मानो प्रभु को अपने अन्दर छिपाए हुए है। इसलिए सब मनुष्यों को अपना पुण्य नष्ट नहीं कर देना चाहिए, इसे सदा बढ़ाते ही रहना चाहिए। पुण्य में इतना बल है कि जब तक पुण्य फल का जोर साथ रहता है—वह मनुष्य जितना अहंकार करे, उसे जंचता है, जितना मोह करे उसे सजता है, जितना कामासक्त हो—उसे मस्ता है, परन्तु जब पुण्य समाप्त हुआ कि प्रभु ने मुख मोड़ लिया। अब सब देव उसे नष्ट करने में लग जाते हैं। कोई भी सहायता नहीं करता। जैसे वृक्ष की शाखा जब उससे पृथक् हो जावे तो सूर्य उसे जलाता है, वायु उसे सुखाती, मिट्टी उसे खा जाती है। वह फिर हरी भरी नहीं होने पाती। पानी भी उसे बहा ले जाता है। ठीक वही हाल होता है। इसलिए सब मनुष्यों को अपने पुण्य किसी भी मूल्य पर नष्ट नहीं करने चाहिएं। वाह रे पुण्य! तू बड़ा प्रतापी है। पर तेरा प्रताप है इसीलिए कि तुम में प्रभु छिपा बैठा रहता है।

हमारी मांग तीन प्रकार की

अधम मनुष्य तो सुख भोग के लिए प्रभु से अन्न, धन, जन मांगता है। मध्यम पुरुष अपने जीवन के लिए मान, आदर, सत्कार मांगता है। उत्तम मनुष्य प्रभु से अपने नाम दान के लिए पथ प्रदर्शक सदाचार सम्पन्न ज्ञानी, सद्गुरु की मांग करता है कि मुझे सद्गुरु दीजिए, जो उसे संसार सागर से पार का मार्ग बतावे।

सामवेद—में भी प्रार्थना और मांग भक्त की है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक और दैविक–आत्मिक रोगों का औषधि नियम भिन्न

भौतिक रोगों में एक–एक रोग की कई–कई दवाइयां हैं–पर दैविक और आत्मिक रोगों का उपाय निश्चित और एक ही होता है। जैसे अंधकार का इलाज प्रकाश है, चाहे अन्धकार थोड़ा हो या अधिक, किसी भी देश–प्रदेश में हो–एक ही उपाय है। बाह्य भूख चाहे किसी को हो, इसकी निवृत्ति अन्न जल से होगी, ऐसे ही आध्यात्मिक का एक ही निश्चित है।

पृथ्वी नटशाला

प्रभु के नाटक और मनुष्य के नाटक में क्या भेद है?

समस्त संसार ही प्रभु की नट शाला है, उसमें सब देवता अपना–अपना पार्ट अदा कर रहे हैं–हर वह पार्ट खेल रूप में नहीं, अपितु क्रियात्मक रूप में–कार्य रूप में है।

सभी प्राणियों को न केवल शिक्षाप्रद है अपितु सब का उपकार कर रहा है, और निरन्तर करता रहता है।

जिस ऐक्टर (पात्र) का जो नाम है–वैसा ही उसका काम है। सदा उसी नाम और काम से प्रसिद्ध है। पर मनुष्य का नाटक चौबीस घण्टे नहीं रहता–अल्प काल के लिए रहता और वह खेल रूप से होता है। इसके जीवन में क्रियात्मक रूप नहीं होता, क्षणिक मात्र होता है। इस अल्पकाल के बाद इसका नाम और काम दूर हो जाता है। जब जिस मनुष्य का वह पार्ट जीवन में आ जाए–तो फिर वह भी प्रभु का काम बन जाए। ६–६–४६

मनुष्य और भगवान् के लेन–देन का भेद

मनुष्य देता है थोड़ा–लेता है बहुत। पर प्रभु देव देता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है बहुत और लेता कम है। ज़मीन एक दाना लेती है–सैकड़ों कर के देती है। मनुष्य कब ऐसा होगा जब ले थोड़ा–दे बहुत? जब वह राजा या देवता बन जावेगा।

"प्रभु–लीला" (भोग अवस्था में)

जीव का जो भोग है–वह है तो निश्चित, पर कहां निश्चित है–यह मनुष्य के अपने ज्ञान में नहीं। एक विचित्र चिह्न है–जिसके यहां, जिसके द्वारा, जिसके साथ, प्रभु ने जिस–जिस जीव का भोग बनाया है, उसको ही चिन्ता लगी रहती है। और जब जिस जीव का भोग उस स्थान से समाप्त होना होता है, तब वह अपने आप, या किसी कारण से चिन्ता रहित हो जाता है, अपने आप छूट जाता है।

जब किसी की जीविका किसी स्थायी–द्वार से समाप्त हो जाती है–तो उसे अपनी चिन्ता आप को लगी रहती है–तब उसके लिए उसे परिश्रम करना पड़ता है–चाहे संकल्प मात्र हो या बहुत हो, चिन्ता करनी स्वयं पड़ती है। ११–१०–४८

शान्ति और भय का नियन्त्रण

परमेश्वर ने सारे ब्रह्माण्ड को दैवी योग से दो चीज़ों से भर दिया है शान्ति और भय से। हम निर्भय हों तो शान्ति ही शान्ति रहेगी। भय कब दूर हो? जब हमारी मित्रता हो जावे–उससे भी जिससे हमें भय प्रतीत होता है। मित्र का स्थान आंख है। इसलिए नेत्र में मित्र प्राण रहता है। भय कौन दिलाती है–आंख और कान। और भय और शान्ति कहां से प्रतीत होती है–वाणी और प्राण से। जब हम भयभीत होते हैं, तो हमारा प्राण शुष्क होने लगता है। वाणी बन्द हो जाती है। प्रभु देव ने इसलिए आँख और मुख हमारे अधिकार में रखे कि जब चाहें खोल लें, जब चाहें बन्द कर लेवें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२–६–४६

ओ३म् पाहि नो अग्न एकया पाहि उत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जा पते पाहि चतसृभिर्वसो।।

यजु. २७/४३।

भगवान् की लीला

प्रभाव

भगवान् की शक्तियों का फल भक्त पर भिन्न

दया–क्षमा

चार शक्तियां

विस्मृति–प्रेम

दया, क्षमता, विस्मृति और प्रेम–ये चार शक्तियां प्रभु की, रक्षा करने वाली हैं।

१. भक्त के ऊपर जो प्रभु की दया होती है–वह अन्य मनुष्यों से विचित्र होती है। धर्म, ज्ञान, शक्ति–जो भक्त को प्राप्त होती है–भगवान् अपनी दया से भक्त के मस्तिष्क से उतार देता है। अर्थात् भक्त इन्हें भी ऐसा समझता है कि इन पर कोई भरोसा नहीं। केवल प्रभु की दया का आश्रय चाहिए, अहंकार रहित हो जाता है। संसारी लोगों में प्रभु की दया प्राप्त होने पर अहंकार प्रबल हो जाता है और भक्त से अहंकार को मिटा देती है।

२. प्रभु–क्षमा जब भक्त में आती है तो उसके किये पापों का फल इसी के अपने रुदन से दूर हो जाते हैं, और वह सावधान और सचेत हो जाता है, आगे के पापों से भी बच जाता है। परन्तु संसारी मनुष्य पर जब क्षमा होती है तो वह और बेपरवाह हो जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. विस्मृति प्रभु की बड़ी देन है। भक्त में जब आती है—तो उसे उन सब द्वेषों की विस्मृति करा देती है, जिससे दूसरों के लिए अन्याय और स्वार्थ से सताए, लूटे, हानि पहुंचाए का बदला लेता। वे सब के सब भूल जाते हैं। उसे इतना भी स्मरण नहीं रहता कि किसी ने दुःख दिया था, या अन्याय किया था, लूटा, हानि पहुंचाई थी। इससे वह शांत चित्त रहता है। पर संसारी लोगों में दूसरे की कृतज्ञता की विस्मृति हो जाती है। स्वार्थ के कारण वह सब भलाइयों को भूल जाता है। बड़प्पन में निर्धन रिश्तेदारों को भी भूल जाता है। सब से बड़ी विस्मृति अपने किए पापों, बुराइयों और दुःख, निर्धनता, विपत्ति के समय को भूल जाना है।

चौथा है प्रेम, जो भक्त को भगवान् से पृथक् नहीं होने देता। जब भगवान् जिसके साथ रहें—उसे फिर कमी ही क्या? मनुष्य में अल्पज्ञता के कारण भूल तो अवश्यम्भावी होती है पर अपनी—अपनी प्रकृति के अनुसार भूल होती है।

१. सात्विक—वृत्ति वालों में जितनी—जितनी सात्विकता बढ़ेगी उतनी—उतनी भूल—विस्मृति होती जावेगी—सांसारिक विषयों से विस्मृति, नेकी करके भूल जाना, दूसरे की की हुई बुराई को भूल जाना।

२. राजसिक वृत्ति वालों में भी जितनी भूल होती जाती है, निर्धन मित्रों, दीन दुःखी परिवारों को भूल जाना।

३. तामसिक वृत्ति में—प्रभु को, शुभ कामों को, जीवन की आवश्यक सामग्री को, कृतज्ञता को भूल जाता है। १०—२—४६

प्रभु लीला (उद्देश्य द्वारा नियन्त्रण)

एकता दो प्रकार की होती है—एक बाह्य, दूसरी आंतरिक।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां गुण, कर्म, स्वभाव की एकता है–वह एकता होगी आंतरिक। जहाँ किसी व्यवहार की एकता होगी–वह बाह्य। पर एकता कराने वाली शक्ति उद्देश्य ही होता है–बिना उद्देश्य एकता सफल नहीं होती।

प्रभुदेव ने तत्त्वों में गुण कर्म स्वभाव रखे हैं। वे उनके अपने लिए नहीं अपितु उनके गुण कर्म स्वभाव केवल मात्र संसार कल्याणार्थ हैं, यद्यपि एक दूसरे के विरोधी कर्म स्वभाव रखते हुए। उदाहरणतया–अग्नि का स्वभाव ऊपर जाना, जल का नीचे जाना है। कर्म अग्नि का जुदा करना और जल का मिलाना है। तथापि उद्देश्य के लिए उनकी एकता हो जाती है। शरीर में अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश सब मित्र रूप से रह रहे हैं। पर यह एक दूसरे के मित्र नहीं–संसार के प्राणियों के मित्र हैं। इकट्ठे रहते हुए भी यदि अग्नि जला रही है, तो जल उसे बुझा देगा। तब वह जल सहवासी होने की परवाह नहीं करेगा। जल रक्षा करने के लिए जो उसका उद्देश्य है, पूरा करने के लिए अग्नि को बुझा देता है। यदि जल में दोष आ जाए तो अग्नि उसे जला देती है, उद्देश्य अशुद्धि से रक्षा करना है। बाह्य एकता में मित्रता स्थायी नहीं रह सकती–पर आंतरिक एकता में कभी जुदाई नहीं आ सकती।

आशीर्वाद, शाप अकारथ कब?

मोह से दी हुई आशीर्वाद और पक्षपात द्वेष से दिए हुए शाप का कोई प्रभाव नहीं होता। ११–११–४८

आंखों में से नाक को घटाना–मुक्ति

यज्ञदत्त बालक घटाई सीख कर आया। दादा पूछ रहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—आज क्या सीखा? तो बालक ने कहा घटौती। इस पर चाचा ने, दादा ने बारी—बारी से प्रश्न किया। पिता ने उसे ढंग सिखाया—अब वह प्रश्नों का उत्तर बिल्कुल ठीक देने लगा। बालक चला गया। फिर कुछ देर बाद आया। उसे खुशी थी कि सब प्रश्नों का उत्तर ठीक देता रहा, अब भी वह फिर दादा से कहने लगा—और प्रश्न करें। इसके पिता, दादा आध्यात्मिक वार्तालाप कर रहे थे। बालक की यह बात 'दखल दरमाकूलात' (उचित प्रसंग में अनुचित) इन्हें नजर आई। पर बालक ने तो अपनी बात करनी ही थी—बुरी भी न थी। जब अचानक इस पर प्रश्न किया गया (बच्चे से) अच्छा बताओ—आंखों में से नाक को घटा दिया जाए तो शेष क्या बचेगा? यह एक अचम्भा—सा बन गया। पर बालक के पिता को विश्वास था कि इसमें कोई आध्यात्मिक रहस्य है। क्योंकि वार्तालाप हो रहा था—तो फिर उस पिता ने प्रश्न का समाधान किया जितना उसकी समझ में आया—

समाधान—मन में ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रभाव पड़ता है और चाह पैदा होती है। उस चाह का सम्बन्ध प्राण नासिका से है। आंख सब से ऊंची और बड़ी इन्द्रिय है—जो चुपचाप एक ही समय में, और हर समय में, बिना किसी की पराधीनता के, हर तरफ की वस्तु को देख लेती है। कान तो पराधीन हैं—दूसरे की वाणी के। आंख अपने आप देखने वाली है—इसलिए जब आंख से नाक (प्राण या चाह) को निकाल दिया जावे—तो बाकी क्या रहा? कुछ भी न। यही मुक्ति है। वैसे भी प्राण निकल जावे—तो बस कुछ भी नहीं रहता। १६—११—४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार तरंग

अतिथि सेवा के भावों का विश्लेषण

जैसा और जो आप खिलाओगे–वैसा मैं उगलूंगा। इन्हें समझ न आई और पूछने लगे। मैंने कहा–आप जानते हो, जैसी वस्तु खाई जाती है–वैसी सुगंध या गंध, और गर्मी सर्दी का प्रभाव बाहर प्रतीत होता है–यह तो है इसका भौतिक रूप। परन्तु जिस भाव से खिलाई जाती है, खिलाते समय जो भाव बन जाते हैं–वैसा ही मनुष्य के मन से वाणी द्वारा बाहर रूप धार कर शब्द आवेंगे। यदि आप श्रद्धा और प्रीति (सच्ची) के भाव से खिलाओगे तो जो विचार मेरे अन्दर से आप को सुनाने के लिए निकलेंगे, वे सच्चे और मधुर होंगे। आप को इसके सुनते खुशी होगी, आपका चित्त प्रसन्न होगा, और सुनने को जी चाहेगा, उठने न देगा, एक तार कर देगा। आप का कल्याण हो जाएगा। यदि आप श्रद्धा से तो खिलाते हो–पर उसमें दिखावा अधिक करते हो–या खुशामद से पदार्थ बनाया–मुंह बना कर खिलाते हो–तो मेरी वाणी से भी दिखावे और खुशामद के शब्द निकलेंगे। आप खुश तो होंगे पर इनका प्रभाव मन या आत्मा पर न पड़ेगा। अपितु जो पड़ेगा, उससे आप धोखे में रहेंगे। अपनी प्रसन्नता में मार्ग को भूल जाएंगे, रुकावट आ जावेगी। इससे दो घाटे आप के पल्ले पड़ेंगे, एक तो वस्तु का अधिक खर्च, और दूसरा उन्नति का रुकना।

यदि आप खिलाने में कोई चालाकी, युक्ति से, या अपनी बुद्धिमत्ता से कोई खोटी वस्तु भी खिला देते हो, या खोटी वस्तु को अनजाने में अच्छी वस्तु जान कर खिला देते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो—तो मेरी बुद्धि भी खोटी बातों को खरी बना कर तुम्हारे सामने रखेगी—जिसका तुम को भान नहीं होगा। तो तुम्हारे पल्ले खोटा ही पड़ेगा। तब भी तुम्हारी अपनी हानि है—रुकावट बनी रहेगी। एक स्थान का नक्शा मेरे सामने आया—एक सद्‌गृहस्थी की बड़ी श्रद्धा है—अतिथि आया, श्रद्धा से भोजन बनाया, पर वनस्पति घी से खूब रोटी सब्जी तर करके दी। अतिथि देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ—कि कितनी श्रद्धा इन में है। प्रेम से खाता रहा। परिणाम यह हुआ कि गला उसका बैठ गया—शिकायत की कि घी खराब है—उन्होंने कहा—हां, वनस्पति था। अब उनके लिए शुद्ध घी तलाश करके लाए—दिखाया, अतिथि उनकी श्रद्धा पर फिर अधिक प्रसन्न हुआ। भोजन बना, देवी में श्रद्धा भी और धर्मभान भी है—पर उसे अपने घर के व्ययों की जिम्मेदारी का भी ज्यादा एहसास है। सब्जी अच्छे घी से बनाई—कहा महाराज आज शुद्ध घी प्रयोग किया है। जब रोटी बनाने लगी—तो ख़याल आया कि यह घी तो जल्दी समाप्त हो जायेगा—फिर मिलना कठिन है, अतिथि सेवा भी अच्छी तरह करनी चाहिए—यही धर्म है—तो ख़याल किया अब वनस्पति घी का तो लाभ उठाना है—इसे फेंक सकने की तो सामर्थ्य नहीं। तो वह उस वनस्पति घी से परौंठे बनाने लगी। देखने से तो अतिथि को और भी प्रसन्नता हुई—उनकी श्रद्धा पर—पर जब खा चुका—तो गला फिर पकड़ा गया, पुरुष ने कहा—महाराज परौंठे पर पानी पीने का कारण ही होगा—अन्यथा घी तो शुद्ध था। आप के सामने लाए। अब पुरुष बेचारे को तो इस धर्मान्ध भावना का पता न था—अपनी स्त्री का। अब अतिथि ने रोक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया—कि अब परौंठा न बनावें अनचुपड़ी ही देवें—वैसा ही हुआ, अब गला ठीक हो गया। फिर दूसरे दिन रोटी बनी—तो स्त्री देवता ने दोनों घी पास रख दिए। अपने पति और परिवार के लिए तो वनस्पति से चुपड़ती और अतिथि के लिए शुद्ध घी से। पर बीच में ऐसे भी कर लेती कि शुद्ध घी न लगा कर—किसी वक्त वनस्पति घी से भी चुपड़ देती—किसी वक्त शुद्ध घी से। भाव यह है कि जिस गृहस्थ ने अतिथि या गरीब मुसाफिर मेहमान के भाव के रूप को नहीं समझा—वह भूल करेगा और वैसा ही उत्तर में फल मिलेगा।

वाणी संयम

वाणी संयम की सब शास्त्रों ने बड़ी ताकीद की है—क्यों? मनुष्य जो कुछ अपने शरीर के अन्दर पेट में या हृदय (मन) में बुद्धि या आत्मा में ग्रहण करता है वह सब ज्ञानेन्द्रियों की बरकत से करता है। जिस प्रकार और जिस भाव से वह जिस इन्द्रिय से जो ग्रहण करता है वैसा ही वाणी से प्रकट होता है। उदाहरणतः आंख से पुत्र को देखता है तो बोलने पर पुत्र के अनुकूल शब्द वाणी से निकलते हैं। स्त्री को देखता है, माता को देखता है—तो वैसे—वैसे शब्द निकलते हैं। पर जब कहीं किसी पर—स्त्री को आंख से मैली नजर से देखता है तो मन उसी समय मैला हो जाता है। चूंकि वह पर—स्त्री को चोरी आंख से देखता है साधु आंख से निडर होकर नहीं देखता। इसलिए जब वाणी से वह स्त्री से बात करेगा या करनी पड़ेगी तो वह शब्दों की चोरी करेगा, कपट और छल से वाणी बोलेगा। कान से यदि बुरे शब्द, बुरे विचार सुनता है तो वाणी से अवश्य अपशब्द निकलेंगे। नासिका दुर्गन्ध या सुगन्ध का, जैसा प्रभाव पड़ता है वैसा ही शब्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाणी से निकलता है। ऐसे स्पर्श से। सब से बड़ी बात फिर वही है कि जैसा ही रसना इन्द्रिय से ग्रहण करता है उससे शरीर में मन बुद्धि चित्त पर और आत्मा प्राण पर, अभिप्राय यह कि सब अंग–अंग और अंश–अंश नाड़ी–नाड़ी पर, उसका प्रभाव आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक पड़ता है। इसलिए जिस भी हाव या भाव से खाया, खिलाया, परोसा, पकाया, कमाया जाता है न केवल यह, अपितु दूसरे की दृष्टि पड़ने का, शुद्ध या अशुद्ध भाव का भी प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार से ही वाणी प्रकट करती है, वाणी बिल्कुल विवश हो जाती है। यह तो यन्त्र रूप है, इसलिए वाणी के संयम की सब इन्द्रियों से अधिक आवश्यकता है। और अधिक के अलावा प्रथम ही आवश्यकता है, क्योंकि यह सब का यन्त्र है। आंख का, कान का, नाक का, त्वचा का, मन और बुद्धि का यन्त्र है।

मनुष्य को महान् बनाने वाली उसकी वाणी है

ओं जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदा अंगुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः।। यजु. २०/६।

किसी भी अन्य योनि को वाक् शक्ति प्राप्त नहीं, एक मनुष्य को ही है, इसलिए इसकी महानता और महत्त्व भी यही है। संसार के सब रस पदार्थ मनुष्य की ही जिह्वा को प्राप्त हैं। और केवल मनुष्य ही है जो वाणी द्वारा प्रभु का नाम–रस दे सकता है, गा सकता है, और ले सकता है। ज्ञान दान कर सकता है। जन्म से प्रेम और प्यार भी, इस वाणी द्वारा मनुष्य का बच्चा, माता से पाने का अधिकारी होता है। इसलिए इसकी सहायता का बड़ा साधन है। इसी के सुधारने, संवारने, संयम में रखने और इसी से सत्यवादी होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मनुष्य महापुरुष बनता है। इस वाणी की जो कीमत जानता है–उसी की ही कीमत संसार में अधिक पाई जाती है। ज्ञान दान, भक्ति और नाम दान जैसा श्रेष्ठ कर्म वाणी से ही हो सकता है। १७–६–४६

अतिथि भोजन चौके में क्यों?

"आर्य हिन्दू जाति में चौके में अतिथि को खिलाने का विशेष महत्त्व क्यों है?" वह यह है कि जब अतिथि आया हुआ चौके से बाहर खिलाया जावेगा–तो भोजन पहुंचाने में कोई और तीसरा चौथा व्यक्ति खड़ा करना पड़ेगा। अगर चौके में खिलाया जावेगा–तो एक ही देवी, जिसने श्रद्धा से गूंधा, पकाया और परोसा, वही एक चित्त, एक रस श्रद्धा से खिलाएगी–इस पर दूसरे के भाव का प्रभाव न पड़ेगा। और जब कोई अतिथि चौके में आ जावे–चूंकि गृहस्थी की श्रद्धा होती है–तो उस समय देवी, जिसने पहले भी श्रद्धा से भोजन तैयार किया है–अतिथि के दर्शन और मौजूदगी में, उसके मन की एकाग्रता और पवित्रता बनी रहती है। उसकी उपस्थिति में वह भावनाओं को और भी शुद्ध और श्रद्धामय बना रही होती है, अर्थात् मेहमान और मेज़बान अतिथि और गृहस्थी का तदरूप तद्भाव हो जाना, बन जाता है। इससे श्रद्धालु और ज्ञानी गृहस्थी बहुत आसानी से अतिथि के गुणों को ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है।

सावधान रहो

यह एक प्राकृतिक नियम है कि केन्द्र से दूर होने पर गति की शक्ति कम हो जाती है। मानव सुख का केन्द्र अपना घर, माता–पिता, स्त्री परिवार होता है–तो जितना इनसे दूर चला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
जाएगा, उतना सुख कम मिलेगा। सद् विचारों का केन्द्र सत्संगति है। जो सत्संगति से जितना दूर हो जावेगा—उतना सद् विचारों में कमी आवेगी। ज्ञान और आचार भक्ति का केन्द्र गुरु है, जितना गुरु चरणों से दूर होगा—उतनी विवेक वैराग्य भक्ति में कमी आवेगी। आनन्द का केन्द्र प्रभु है, जितना प्रभु से दूर हो जावेगा, उतनी आनन्द में कमी आवेगी। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जो खेती नदी के समीपतर होती है, उसे अपने आप तरावट रहती है। जो जितनी दूर है वह तरी को तरसती रहती है। कुएं के कण्ठ के पास की खेती की मिनटों में सिंचाई हो जाती है, और जो बहुत दूर है उसे बहुत समय पानी पहुंचने में लगेगा। जितना पानी कुएं से निकाला जाता है—बहुत—सा भाग रास्ते में खप जाता है और कुछ रह जाता है। खेती पूर्ण रूप से पानी नहीं ले सकती, जितना उसके लिए निकाला गया था।

सुख का सम्बन्ध शरीर से है—इसलिए शरीर पर न्यूनाधिकता का प्रभाव होगा। सद् विचारों का सम्बन्ध मन से है—इसका मन पर प्रभाव होगा। ज्ञान, विवेक, आनन्द का सम्बन्ध आत्मा से है—इस का प्रभाव आत्मा पर पड़ेगा। मन जब केन्द्र से दूर हो जाता है—तो उसकी मुतरजम (अनुवादक) वाणी है। वाणी में असत् की अधिकता और सत्य की कमी आनी आरम्भ हो जाती है। यह एक चिह्न है—वाणी में मधुरता की बजाये बनावट या कठोरता, मन में उदारता की बजाय संकीर्णता और स्वार्थ आ जाता है। इसलिए हर मनुष्य को आवश्यक है कि वह अपने सुखकारी केन्द्र से दूर न होवे—अन्यथा वे सब कारण, जो मनुष्य को गिराने वाले हैं—आ डेरा डालेंगे। १४—१०—४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन–किन को एकान्त में आदेश दिया जाता है? कौन और किस को?

१. भगवान् से अपने भक्त को ध्यान में।
२. गुरु से अपने शिष्य को वाणी में।
३. पति से अपनी पत्नी को कान में।
४. स्वामी से अपने सेवक को मकान में।
५. पिता से अपने पुत्र को अपने ही दरम्यान में।
६. लाभप्रद समाचार सुनाना हो तो सर्वसाधारण में।
७. लाभप्रद समाचार समझाना हो तो एकान्त में।

२४–१–४६

दिखावे और कपट की विवेचना

दिखावे और कपट की आदत साधना में घातक और बाधक होती है। इनमें क्या भेद है? –दिखावा वह होता है–जो बाह्य–क्रिया के लोगों पर प्रकट किया जावे। अपनी मान–प्रतिष्ठा व प्रशंसा करने के लिए किया जाता है। उस क्रिया का आन्तरिक जीवन पर प्रभाव नहीं पड़ता–अन्तर शून्य, क्रियात्मकता (आचरण) से खाली रहता है।

कपट वह होता है–जो आचरण तो किया जाता है–पर लोभ के लिए–कोई स्वार्थ सामने रख कर। उदाहरणतया एक आदमी आसन लगा, आंखें मूंद, समाधिस्थ अवस्था में बैठ जाता है–कि लोग मान करें कि योगी है, पर वास्तव में योग के ज्ञान से शून्य है।

बनावटी रूप से मुस्कराहट होठों पर रखता है–पर अन्दर से महाक्रोधी है। दान–पुण्य या सेवा करता है, नम्रता दिखाता है कि लोग प्रशंसा करें–पर दिल इन से खाली है–यह सब दिखावा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कपट–कोई किसी को इसलिए सिखाता है कि इसे सिखा कर इसे लूट लूं, या सेवा करेगा।

सीखने वाला इसलिए सीखता है कि योग सीखकर धन कमाऊंगा–लोगों को अधीन करूंगा।

प्राणायाम रहस्य

प्रश्न–प्राणायाम विधिपूर्वक किस प्रकार करना चाहिए कि बुद्धि सूक्ष्म और बुद्धि के ऊपर से अस्वच्छ आवरण दूर हो। रेचक और कुम्भक कितनी–कितनी देर और कौन पूर्व और कौन उपरान्त? प्राणयाम का पूर्ण लाभ प्राप्त हो?

उत्तर–प्राणायाम सम्बन्धी भी कई एक प्रसिद्ध महानुभाव अभ्यासी विद्वानों ने लिखा है। चतुर बुद्धि के संस्कारी जन तो उनको पढ़ कर अपने जन्मान्तर के संस्कारों से स्वयं लाभ उठा सकते हैं, परन्तु साधारण जन को किसी माहिर मश्शाक कुशल अभ्यासी से सीख कर करना चाहिए, और उसकी निगरानी में समय लगा कर सीखना और करना चाहिए–अन्यथा कहावत प्रसिद्ध है–**सुने सुनाये जो करे योग, काया छीजे बढ़े रोग।**

इस कार्य में ब्रह्मचर्य–व्रत की अति आवश्यकता होती है। मनुष्य अन्दर और बाहर से जकड़ा हुआ है–बाहर तो विषयों से और अन्दर वासनाओं से। प्राणायाम ऐसा रत्न है कि जो दोनों को अपने वश में करा देता है। इसमें–**स तु दीर्घकालनैस्तर्य. सत्कारासेवितो दृढ़भूमिः।** पर आचरण करने से ही सिद्धि होती है। उतावले और शौकिया करने से नहीं।

रेचक से पूरक आधा, और कुम्भक दो गुना होना चाहिए या पूरक से रेचक दो गुना और कुम्भक चौगुणा होना चाहिए,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर रेचक करते समय, पहला रेचक तो बहुत जोर से करना होता है—इसके बाद जितने बार भी रेचक होता है—अत्यन्त धीरे—धीरे कि आवाज सुनाई न दे। इसमें हठ से कुम्भक न करना चाहिए। रेचक में मूल बन्ध, उड्डियान बन्ध और जिह्वा का उलटना आवश्यक है। बन्ध लगाए बिना लाभ न होगा। गुदा को ऊपर सुकेड़ने का नाम मूल बन्ध है और पेट को पीछे पीठ की ओर सुकेड़ कर ले जाने का नाम उड्डीयान बन्ध है। एक और बन्ध भी है जिसे जालन्धर बन्ध कहते हैं। जो कुम्भक के समय ठोडी को विशुद्धि चक्र में लगाने को कहते हैं। इन तीन बन्धों को लगाने से प्राणयाम की सिद्धि शीघ्र होती है। शीघ्र से अभिप्राय तत्काल नहीं समझना चाहिए—अपितु जितना काल साधारण रीति से प्राणायाम में लगता है—उससे बहुत कम काल में इससे सिद्धि हो जाती है। पुस्तकों में लिखी हुई बातों को फिर—फिर दोहराने से कोई लाभ नहीं किसी को, जितना क्रियात्मक रीति से स्वयं करने में होता है। इसलिए जिसको प्राणायाम का शौक हो—उसे किसी प्रसिद्ध योगी या अभ्यासी को ढूंढ़ कर अपना काम सिद्ध करना चाहिए। और उस की निगरानी व हिदायत (आदेश) से अपना जीवन प्रोग्राम बनाना चाहिए, बस यही श्रेष्ठ उपाय है।

प्राणायाम का फल—**"क्षीयते प्रकाश—आवरणम्"** लिखा है।

प्रश्न—यह आवरण क्या प्राणयाम—रेचक, पूरक, कुम्भक करने से ही हो जाता है?

उत्तर—प्रत्येक क्रिया अपने आप में जड़ है, और जो गति भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह भी जड़ प्रकृति के नियम से है। इस क्रिया में जो गति साधक मनुष्य करता है, वह चेतनभाव से करे—तब आवरण अवश्य दूर हो जावेगा—अन्यथा नहीं। प्रत्येक देहधारी जीव को प्राण ही सबसे अधिक प्यारा होता है, इसी प्राण के द्वारा ही सभी क्रियाएं और चेतनाएं होती हैं। अच्छी और बुरी वासनाएं जो सोई रहती हैं—इन्हें भी प्राण ही जगाता है। इसलिए प्राण को गहरा करना, गहरा करते समय वह गुह्य भाव रखना चाहिए, अन्यथा ऐसे तो साधारण रूप से प्राण आता जाता और रुकता भी है, अन्दर भी रहता है, बाहर भी रहता है।

भाव—प्रभु ने हमारे प्राण में स्वभावतः यह लक्ष्य रखा हुआ है कि हम को जो प्राण से जीवन देते हैं, उनको भी जीवन प्राण से दिया जावे। वृक्ष—वन के हमें प्राण देते हैं। हम उनको अपान से जीवन दान देते हैं। यह सब बिना संकल्प, हमारे और उनके हैं। स्वभाव से प्रभु का नियम चल रहा है। हम को यह स्वभाव गुण धारण करना चाहिए कि किसी के भी उपकार या प्रति उपकार किये बिना अपनी मौत समझें, प्रत्युपकार से ही हमारा जीवन जीवित होता है। पृथ्वी हम को अन्न देती है, यदि अन्न फिर पृथ्वी को न दिया जाए तो वह कुछ न देगी। हम भूख से मर जायेंगे। पांचों प्राणों के गुणों को हमें धारण करना पड़ेगा। इन भावनाओं से रेचक, पूरक, कुम्भक करने से आवरण दूर होगा। समान से—समानता, व्यान से—सब को अपना भाग विभक्त कर देना, और उदान से—सुख और शान्ति का दान करना, अपान से—दुरित भावों का त्याग, प्राण से—उत्तम जीवन का ग्रहण कर रहा हूं यह भाव है। १६—५—४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग—कच्ची साधना में

समाधि का भंग स्पर्श से, ध्यान का भंग शब्द से, धारणा का भंग रूप से, प्रत्याहार का भंग रस से और प्राणायाम का भंग गन्ध से होता है।

तीन प्रकार की सिद्धियां, इनके स्थान, साधन और रुकावटें

सिद्धि रुकावट मानी गई है। सिद्धि तामसिक, राजसिक और सात्विक रूप से होती है।

तामसिक—इसका स्थान नाभि है, ऐसा सिद्ध काम विषय में फंस जाता है। इसका साधन वाणी बना करता है, इससे दम्भ करता है।

राजसिक—इसका स्थान मस्तिष्क है। ऐसा सिद्ध लोभी बन जाता है। इसका साधन चक्षु बना करती है।

सात्विक—इसका स्थान हृदय है। यह बहुत उदार होता है, बहुत उत्तम काम करता है। परन्तु जब इसके मान में कोई अपमान या कमी करता है तो क्रोधित हो कर शाप देता है और मन में बुरा चिन्तन करता है। मन इसका साधन बन जाता है। ६—२—४८

योग अंगों से सिद्धियां

आसन से शरीर। प्राणायाम से प्राण। धारणा से चित्त। ध्यान से मन।

समाधि से बुद्धि और निर्विकल्प समाधि से अहंकार समाप्त व लीन होता है। आत्म दर्शन परमात्म दर्शन जैसे—**तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्**, कहा गया है वह अहंकार के विलीन हो जाने पर हुए हैं। ७—२—४८

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर्गः धारण, अशान्ति निवारण
(विधि सहित जप से सिद्धि)

जब तक मनुष्य में भ्रान्ति है—तब तक अशांति रहेगी। गायत्री मन्त्र के जप से भर्गः का धारण या ध्यान करना भ्रान्ति की निवृत्ति करने वाला है, अथवा भ्रान्ति को जला देता है। जप तब तक करते रहना चाहिये—जब तक भ्रान्ति दूर न हो। जप करते रहने से यदि भ्रान्ति नहीं गई—तो समझना चाहिए कि आसक्त मन से जप होता है।

जप विधि—परमेश्वर में पूर्ण विश्वास हो और पूजा में प्रेम हो, प्रीति से भजन किया जावे, और सांसारिक, व्यावहारिक विषयों व्यवहारों से मन उपरात हो जावे। जब ऐसे पूजा हो रही हो—तो उस समय के अनासक्त प्रीति पूर्वक मन से किया जप अवश्य भ्रान्ति निवारण कर देगा। कुछ लोग अपने आप को सुखी समझते हैं—उनकी भ्रान्ति समझिए—जिन लोगों को किसी भौतिक अनुकूलता से सुख मिल रहा होता है—वे भी अपने आप को शान्त समझते हैं। पर दोनों की भ्रान्ति है। शांति बिना अनासक्ति के कभी नहीं हो सकती। १३—८—४६

"सच्चे दिल और नेक कमाई से किया हुआ जप, तप, यज्ञ आदि कर्म"

विपत्ति में नास्तिक कौन, विपत्ति में कृतज्ञ कौन?

कुछ मनुष्य जब किसी विशेष विपत्ति में आते हैं—तो वे नास्तिक बन जाते हैं, और कहते हैं—क्या है परमेश्वर? हम ने इतना दान पुण्य किया, दीन दुखियों की सेवा की, जप—तप यज्ञ किए, कभी किसी को सताया तक नहीं, हमारे साथ ऐसा क्यों हो गया? ऐसे लोगों के जप, तप, यज्ञ, दान, सेवा परोपकार आदि में सत्यता नहीं होती, किसी स्वार्थ से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किए होते हैं, या अनुचित ढंग से कमाए धन से उसे अपना मान कर, किया होता है। वही स्वार्थ और अन्याय, असत्य के परमाणु वहीं बुद्धि भ्रष्ट कर देते हैं। और जिस आदमी ने जप तप, यज्ञ आदि सच्चे मन से किया होता है—उसे जब भी विपत्ति आती है वह प्रभु का धन्यवाद करता है कि मेरे कल्याण—निमित्त आई है—अपितु सूली का कांटा हुआ है। पहली प्रकार के लोगों को अपने पुण्य का अभिमान सिर में समाया होता है।

जब भी मनुष्य में अश्रद्धा और अमर्यादा का रूप देखो, समझो इसमें गुप्त अभिमान प्रकट रूप से काम कर रहा है। इसके बोलने, चलने उठने, बैठने और अनुचित आमने—सामने कार्य करने में ढीठपन होगा और पुण्य कार्यों—अपनी आत्मिक उन्नति के कार्यों में उपेक्षा, प्रमाद और छोड़ी हुई बुराइयों के ग्रहण करने के चिह्न देखे जावेंगे। १३—८—४६

भक्ति रस तो मिला, पर अवगुण नहीं मिटे! कब? क्यों?

बहुत से मनुष्य किसी पवित्र पुस्तक, ग्रन्थ का जप पाठ शोर से करते हुए, या भजन कीर्तन गान में, शोर से गाने में बड़ा आनन्द और रस अनुभव करते हैं—और अपनी समझ में इसे भक्ति रस कहते हैं। यह प्रेम, भक्ति, प्रेम रस आत्मा में नहीं आता, प्राण में आता है, मन तक नहीं पहुंचता। इसलिए वह प्रभु की सत्ता का भान नहीं कर सकते, उनके अवगुण नहीं मिटते। १४—८—४६

व्रत में सावधान

व्रत जिस उद्देश्य के लिए किया जावे, वह उद्देश्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चौबीस घण्टे आंखों के सामने फिरता नज़र आवे। व्रत स्थान के जिधर दृष्टि पड़े–वही स्थान इसी उद्देश्य को याद दिला दे।

व्रत तो आत्मा के लिए होता है–पर उस का आधार शरीर और मन, प्राण होते हैं। आत्मा की तृप्ति तो वास्तविक व्रत (धारणा) से ही होगी, पर शरीर, मन, प्राण अपना–अपना आहार मांगेंगे। जो नित्य भोजन उन्हें तृप्त करता रहा है, वह तो रह नहीं सकता, क्योंकि यदि उसी आहार से आत्मा का कार्य पूरा हो सकता–तो व्रत करने की आवश्यकता ही न थी। अब व्रत के दिनों में, कोई विशेषता भोजन में होनी चाहिए। सो वह भोजन ऐसा होना चाहिए–जो तीनों की तृप्ति करे–शरीर स्थूल है, उससे प्राण सूक्ष्म हैं, प्राण से मन सूक्ष्म है। और प्रत्येक वस्तु या भोजन के भी तीन ही भाग हैं–स्थूल को स्थूल–द्रव्य भोजन, सूक्ष्म के लिए उस वस्तु के गुण कर्म स्वभाव को बड़ी एकता के साथ निश्चय रूप से (ऊपर–ऊपर के ज़बानी अर्थों या जप करने से नहीं) वर्णन करते हुए, ग्रहण करने से सब की तृप्ति होगी।

मन की एकाग्रता और वाणी के वर्णन में इतना प्रेम भरा हो कि वह वस्तु प्रभु की कुदरत प्रतीत हो। इस की निशानी यह है कि मन इतना आर्द्र हो जाए–कि वाणी के वर्णन करते आंखों में प्रेम के आंसू, धन्यवाद प्रभु का, प्रकट कर रहे हों। उदाहरणतया–जल पर व्रत किया है–तो जितनी बार जलपान करना पड़े, हर बार उस जल को आदर से उठाया, और हाथ में ग्रहण किया जावे। आदर इसलिए कि वह प्रभु की विचित्र और विशेष दात प्राप्त हो रही है। फिर घूंट भरने से पहले जल में दृष्टि रखकर उसे अपने भावों से मेस्मराइज्ड

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रभावित) कर दिया जावे। किस रूप में?

१. हे जल देव! तू अमृत है, सब रोगों की दवा है, मुझे भी आरोग्यता प्रदान कर।

२. हे जल देव! संतप्त हृदयों को शान्ति दायक है—मेरे हृदय में शान्ति प्रदान कर।

३. हे जल देव! तू शीतल है—मेरे मस्तिष्क को शीतल बना दे।

४. हे जल देव! तुझ में मिलाप शक्ति है, मुझे भी अपने प्रभु देवता से मिला दे।

५. हे जल देव! तू प्राण पोषक है—मेरे प्राण—बल की रक्षा कर।

६. हे जल देव! तू बेहोशों को होश में लाने वाला है—मेरे भी होश कायम रख।

७. हे जल देव! तू संसार की शोभा है—मेरा जीवन भी शोभायमान बना।

८. हे जल देव! सब हरियाली की जान तू है, मेरा अन्दर बाहर हरा भरा हो।

९. हे जल देव! तेरा गुण रस है—मुझे भक्ति के रस से भरपूर कर दे।

१०. हे जल देव! तेरा कर्म उपकार है—मेरा जीवन यज्ञ व उपकारमय बनाओ।

११. हे जल देव! तेरा स्वभाव नम्र है—मुझे भी नम्र बना दे।

१२. हे जल देव! तू अत्यन्त मधुर है—मेरी वाणी को मधुर—मीठा बना दे।

१३. हे जल देव! तू सब खाद्य पदार्थ पैदा करता है—तेरे ही पान से मेरी क्षुधानिवृत्ति हो कर तृप्ति हो जावे।

व्रत में प्रार्थना दिन—रात में कई बार करनी चाहिए। प्रार्थना ही कठोरता को गलाती और अकड़ को झुकाती है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रार्थना में जब तक रुदन न आए—समझो प्रभु से परे है—प्रेम नहीं उपज रहा। रुदन से सभी नापाकियां (अपवित्रताएं) धीरे—धीरे धुल जाती हैं। प्रेम से विवेक बुद्धि जागती है। किए पाप (मानसिक या ऐन्द्रियिक) सब सामने आ—आ कर पश्चात्ताप कराते हैं, स्वयं शर्मिन्दा हो कर भागने का यत्न करते हैं। मनुष्य की कोशिश से पाप, दोष और बुराइयां नहीं भागतीं—जब तक वह स्वयं शर्मिन्दा न हो। प्रभु देव की अपार कृपा हो जाती है, जब प्रार्थना से कठोरता गलती और प्रेम उपजाती है; तभी पाप शर्मिन्दा होते हैं।

जब कभी प्रार्थना में आंख में नमी न आए—समझो प्रार्थना नीरस है, कोई सुनने वाला विद्यमान नहीं है और सुनाने वाला भी अन्धा ही है। उसी दम अपनी पड़ताल करो, कौन चोर घुस गया है—क्या आवरण छा गया है। आज आत्मा भूखी रह जायेगी, दिन अच्छा नहीं बीतेगा—दैवी शक्तियां सहायता नहीं करेंगी—सब सौदा घाटे का ही बन जाएगा। एक बार की नीरसता को साधारण न समझना।

जप में या यज्ञ में, ध्यान में या प्रार्थना में—स्वप्न में कोई नई अनुभूति हो—उसे स्मृति में सदा रखते हुए भी उत्साह और भय बनाए रखें। ये दोनों चीजें धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म में निवृत्ति बनाने के साधन हैं।

साधना के आदेशों का प्रतिदिन पाठ करना; और विचार करना, कि कौन—सी बात मुझ में दोष जनक है, उसे हटाने में सावधान रहना। और जो वृत्तियां तंग करें उनको नोट करना। नई अनुभूतियों को लिखते जाना चाहिए।

व्रत में—किसी भी काम में उतावल नहीं करनी—अपितु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब क्रियाओं को बड़ी गम्भीरता और विचार सहित सावधानी से करना, मन पर प्रभाव डालना है जब कोई और काम संसार का है ही नहीं—तो उतावल क्यों करनी?

जागना और सोना प्रार्थना के साथ हों। प्रभु के आश्रय और प्रभु के अर्पण हों। तो मनुष्य जागृत और स्वप्न दोनों में सुरक्षित रहेगा।

शास्त्रों ने कहा है कि "दन्डो हि धर्मः" दण्ड ही धर्म है। जब तक मनुष्य को भय न हो—वह कर्त्तव्य कर्म ठीक रीति से कर ही नहीं सकता। मामूली से मामूली काम भी बिना भय के ठीक नहीं होता। एक भंगी भी भय से सफाई करता है—जब उसे भय न हो, कि मुझे दण्ड मिलेगा तो वह ऊपर—ऊपर से सफाई करके गंद की ढेरियां एक ओर लगा रखेगा। जब कोई अफसर आने वाला होगा—तो उससे पहले सारा कूड़ा—करकट उठा कर दूर फेंकेगा। प्रत्येक कार्य की सफलता रीति और प्रीति से करने में होती है। अगर रीति से तो किया जावे, प्रीति न हो तो आत्मा पर प्रभाव नहीं पड़ता। यदि प्रीति हो, और रीति न हो, तो असावधानी रहेगी। रीति का सम्बन्ध ज्ञान और विद्या व शास्त्र से है, और प्रीति का सम्बन्ध आंतरिक हृदय की भावना से है। सब से बड़ा भय आध्यात्मिक उन्नति में होता है—अपने अपयश का (निन्दा) यही सच्चा डण्डा है। जिन लोगों को यह भय नहीं—वे कभी आत्मोन्नति नहीं कर सकते। आज समाज में इस भय—दण्ड के न रहने से किसी का सुधार नहीं हो रहा। २१—२—४६

नाम के दो विशेष अर्थ

प्रभु का नाम तो ओम् है। ओम् रक्षक है। रक्षा कब की जाती है? जब कभी किसी का अपनी वर्तमान अवस्था से पतन होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। ओम् अव् धातु से बना है। अव् के अर्थ, रक्षा करना, और अव् का अर्थ नीचे भी है। तो प्रभु 'अव्' अर्थात् रक्षा करते हैं। प्रभु न केवल रक्षक हैं अपितु बचाते, समझाते और पवित्र भी करने वाले हैं।

अनुग्रह क्या और क्यों?

प्रभु अनुग्रह उन पर करता है जो इन्द्रिय निग्रह करते हैं। अनुग्रह का अर्थ है कृपा, मेहरबानी। निग्रह का अर्थ है निगरानी। प्रभु की कृपा से क्या अभिप्राय है? अभिप्राय है सुख। सुख का भोग करती हैं इन्द्रियां। इन्द्रियों का काम है–ग्रह–विषयों का ग्रहण करना। फिर निग्रह किस बात में किया जावे? सुग्रह और दुर्ग्रह में। सुग्रह से सुख और दुर्ग्रह से दुःख उत्पन्न होता है। सुग्रह क्या है? प्रभु की आज्ञा के अनुकूल ग्रहण कर सुग्रह कहलाता है।

प्रभु प्रेरणा का अनुभव, प्रभु प्रेमी को मानसिक ग्रहण शक्ति अनुसार

वह मनुष्य प्रभु की प्रेरणा को अनुभव करता है–जिसे प्रभु में प्रीति है, प्रभु के प्रेम का पात्र है। परन्तु कितनी प्रेरणा उसे मिलती है–यह निर्भर है–उसकी अपनी मानसिक अवस्था पर। महापुरुषों, ऋषियों, मुनियों को भी उतनी ही प्रेरणा मिलती है जितनी वे ग्रहण कर सकने के योग्य होते हैं।

इस ग्रहण शक्ति का सम्बन्ध बहुत विद्या या ज्ञान के साथ नहीं, अपितु मन की अवस्थाओं पर है। जितनी मन की अवस्थाएं हैं–पवित्रता, उदारता, सरलता, सत्यता, स्थिरता, सहिष्णुता।

कुछ मन पवित्र होते हैं–किसी से द्वेष भाव नहीं रखते, पर होते कंजूस हैं–तब ऐसे मानव के मन में प्रेरणा भी कंजूसी से आएगी।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि पवित्र और उदार भी है—पर सरल नहीं है तो वह पूरी प्रेरणा को सही रूप में समझ नहीं सकेगा, क्योंकि उसका अभ्यास कुटिल है।

यदि वह पवित्र, उदार और सरल भी है—पर इस में सत्यता नहीं, वह मान करने वाला नहीं, तो, स्वयं ही प्रेरणा में संशय कर जाएगा।

यदि सब गुणों के साथ वह सत्य का प्रेमी भी है और स्थिर नहीं है—तो प्रेरणा को जान कर भी, सुनते हुए भी अस्थिर चित्त के कारण कुछ भूल जाएगा। यदि स्थिर भी है—पर उस में सहन नहीं—तो प्रेरणा के अनुसार कर्म करने पर जब भी उसे कोई बाधा पड़ जाएगी या कोई गिला आएगा, तब शक्ति का ह्रास कर बैठेगा। इसलिए जितने—जितने भाग में पूर्ण होगा—उतनी ही प्रेरणा को ग्रहण करने में समर्थ होगा।

प्रसन्नताएं तीन प्रकार की होती हैं

एक तामसिक, दूसरी राजसिक, तीसरी सात्विक।

तामसिक—वह प्रसन्नता होती है जो अन्तःकरण को अपवित्र करती है। जब कोई अपने शत्रु की हानि सुनता है, कैद हो गया, या परास्त हो गया, या मर गया, या उसका मकान जल गया, बीमार हो गया, या उसके धन की हानि—चोरी हो गई, तो ऐसी प्रसन्नता होती है।

राजसिक—प्रसन्नता वह होती है—जो आसक्ति पैदा करती है। विवाह कर रहा या सेवा, दान पुण्य, सत्कार उपकार कर रहा है—किसी का, अपने या पराये लोग यश कर रहे हैं, और अन्दर—अन्दर अहंकार बढ़ रहा है। तो इस प्रसन्नता को राजसिक कहते हैं।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्विक–प्रसन्नता वह होती है–जो अन्तःकरण को पवित्र बनाती है और सत्य के समीप करती है–वह है केवल नमस्कार। जिसे भी, नमस्कार का विचार आते ही, अन्तःकरण में प्रसन्नता होने लगती है और नमस्कार करने पर मन शान्त और प्रसन्न हो जाता है और मुख पर मुस्कराहट बन जाती है। बस, यही आत्मा की मूल–वस्तु है, यह है सात्विक प्रसन्नता, या आनन्द–आह्लाद।

'दूसरों की प्रसन्नता किससे, अपनी प्रसन्नता किसमें'

मेरी वाणी लोगों से मीठा बोलती है, आंख प्रेम भर कर देखती है, हाथ जुड़ जाते हैं, मस्तक नम जाता है–आदर सत्कार के लिए, या शिष्टाचार के लिए, या दान करता है तो इससे लोगों का सम्बन्ध है, लोग प्रसन्न होंगे।

मेरा निज–सम्बन्ध स्थूल शरीर के व्यवहार से नहीं, अपितु सूक्ष्म शरीर–मन, बुद्धि, चित्त से है। यदि मन में विचार शुद्ध नहीं–तो मैं अच्छे काम–शरीर से करने पर भी, चित्त, आत्मा को प्रसन्न नहीं कर सकता। शुद्ध विचार ही, मेरी निजी प्रसन्नता के लिए मेरा आत्मिक व्यवहार बन सकता है। ८–१–४६

ज्ञान, कर्म और भक्ति–कब

ज्ञान–अपने लिए होता है।

कर्म–ज्ञान जब कर्म का रूप धारण कर लेता है–तब संसार के लिए बन जाता है।

भक्ति–और जब वह कर्म प्रभु अर्पित हो जाता है, तब वह भक्ति बन जाती है। इसी से ही मुक्ति मिलती है। १२–१–४६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमावस, पूर्णमासी की आध्यात्मिक महिमा

अमावस का व्रत रीति से बढ़ने, उन्नति करने, कर्म करने का नमूना उपस्थित करता है। पूर्णमासी का व्रत प्रीति का आदेश करता है।

दोनों व्रत प्रभु–प्रियतम के लिए किए जाते हैं। लोग नर–नारी, प्रायः पूर्णमासी का सत् नारायण के नाम से व्रत करते हैं। व्रत करने वाला जीव पूर्ण होने के लिए व्रत करता है। सब योनियां अपूर्ण हैं। मन्द कर्म समाप्त करने के लिए जीव योनि धारण करता है, पर मनुष्य की योनि पूर्ण होने के लिए धारण की जाती है। मनुष्य किसी भी कर्म से, किसी भी ज्ञान से, किसी भी भक्ति से पूर्ण नहीं बनता–केवल सत् ही है–जो मनुष्य को पूर्ण करने वाला होता है। कर्म में–जब सत् कर्म हो और सत् के रूप से हो, सत् रूप के लिए हो, सत् रूप से हो, और सत् स्वरूप का ज्ञान हो, तब ज्ञान भी पूर्ण समझा जाता है। भक्ति भी सत् हो, सतरूप से हो, सत् स्वरूप दर्शन के लिए हो तब भक्ति पूर्ण हो जाती है। इसीलिए सत् नारायण का व्रत किया जाता है और पूर्णिमा का दिन पवित्र गिना जाता है, पूर्ण होने के लिए किया जाता है। इस व्रत, यज्ञ करने वाले के लिए आदेश है कि उसकी वाणी प्रीति से बोले, वेद मन्त्रों का प्रीति से उच्चारण करे, आंख प्रीति से देखे, कानों से प्रीति से सुने, प्रीति से हाथ से आहुति दे, अभिप्राय कि इस प्रभु प्रियतम की प्रीति अंग–अंग से फड़के। जैसे जल, चन्द्रमा, पूर्णिमा के चन्द्रमा, के लिए ऊपर को फड़कता है, उछलता है, ऐसे मन और इन्द्रियां उछलने लगें।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिव्य प्रकाश और दिव्य शक्ति की प्राप्ति

प्रत्येक मनुष्य के अन्दर प्रकाश और शक्ति प्रभुदेव ने रखी है—प्रकाश ऊपर और शक्ति नीचे। बाहर देखने, सुनने, बोलने में अधिक प्रकाश अर्थात् वीर्य व्यय होता है। जितना—जितना अधिक इन इन्द्रियों का प्रयोग करेगा—उतना—उतना वीर्य अधिक व्यय होगा। जितना कर्मेन्द्रियों से अधिक काम लेगा उतनी अधिक शक्ति घटेगी। पर वाणी और पाँवों के अधिक चलाने से शक्ति अधिक घटेगी। जब ऊपर की ज्ञानेन्द्रियों में अहंभाव रहता है—उतना अदिव्य प्रकाश रहता है—जितना अहंकार विसर्जन होगा, उतना दिव्य प्रकाश आएगा। ऐसे कर्मेन्द्रियों में दिव्य—शक्ति तब आएगी जब कर्म में मम (स्वार्थ) न रहेगा। १४—१—४६

कोष—कोष में संयम का फल

माता बालक के पेट की तरफ सदा दृष्टि रखती है। पेट में अपान प्राण को भूख लगती है। माता बच्चे को खिला देती है। अपने प्राण को उसमें प्रविष्ट किए हुए बच्चे के खाने से वह स्वयं रज (तृप्त हो) जाती है। ऐसे अन्नमय कोष को दूसरे के अन्नमय कोष में मिला देने से इस शरीर में शक्ति आ जाती है। प्राणमय कोष में प्राण को मिला देने से तृप्ति हो जाती है। मन को मनोमय कोष से मिला देने से उस के मनोबल, मनो ज्ञान उसमें प्रवेश कर जाते हैं। या मन संकल्प को जान लेता है। प्राण संकल्प आ जाता है। विज्ञानमय कोष में बुद्धि को लाने से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही विज्ञान प्राप्त हो जाता है। आनन्दमय कोष में हृदय लगाने से आनन्द आने लगता है।

"वीतरागविषयं वा चित्तम्" इसीलि[illegible]। भीलों ने द्रोणाचार्य की स्मृति से उस विज्ञान को प्राप्त किया। २५–३–५३

आत्मिक, प्रेम प्राण प्रीति

यदि बच्चे को प्रेम मां से होता है और प्रेम से मां दूध देती है, तो फिर बच्चा बड़ा होकर प्रेम के गुणों को क्यों त्याग बैठता है?

नन्हा बच्चा मां से प्रेम नहीं करता। यदि करता तो मां को देखते ही हर्षित हो जाता। परन्तु जब–जब उसे भूख लगती है और वह रोता चिल्लाता है तो मां जब तक उसे छाती से नहीं लगाती है–चुप नहीं करता। जब स्तन के साथ लगाती है, वह दूध चूसता है तो चुप हो जाता है। यह भूख, रोना, पीटना, चुप सब प्राण की होती है। आत्मा में नहीं और जब बड़ा होता है, तो मां को जब देखता है तो हर्षित होता है, वह भी इसलिए नहीं कि मां है, अपितु आशा के आश्रय हर्षित होता है। आत्मा में जो प्रेम होता है वह तो ज्ञान से होता है। जब तक ज्ञान न हो; आत्मा में नहीं आ सकता। आत्मिक प्रेम फिर अमिट हो जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्विकारता का अति सरल साधन

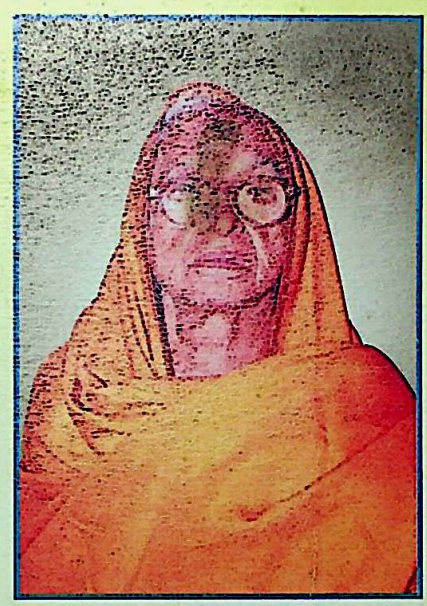
रखो है—यह (संसार) विकारी है, प्रभु निर्विकार है। मनुष्य जिस समय भेदभाव रहित हो, वह समझे कि अब मेरे अन्दर बाहर प्रभु देव का शासन हो रहा है, उसी दम उसी शासन सत्ता को भान करते—करते उसी में तल्लीन (मग्न) हो जावे, तो उसे तुरन्त ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी। प्रत्येक मनुष्य की ऐसी अवस्था निर्विकार होने की आती तो अवश्य है—पर उसे ज्ञान नहीं होता। वह समय खो बैठता है। इसी एक बात के लिए सावधान रहने वाले मनुष्य को और किसी साधन की आवश्यकता न पड़े, यदि वह यही साधन अपनाए।

ओ३म् तत् सत्

—इति—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



माता खुशां देवी

पूर्वनाम माता खुशां देवी धर्मपत्नी श्री हिम्मतराम जी छाबड़ा ने महात्मा सोमाश्रित जी की प्रेरणा से वैदिक भक्ति साधन आश्रम में वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर बड़े श्रद्धाभाव से नित्य यज्ञ करती और सत्संग में शामिल होतीं, सुमधुर भजन गातीं, उनकी परोपकारी दानवृत्ति अनुकरणीय है। यज्ञ आदि शुभकर्मों और अनेक गुरुकुलों, आश्रमों एवं अनाथालयों में हजारों रुपये का दान करके अपने धन का सदुपयोग किया। प्रस्तुत पुस्तक भी माताजी के सात्विक सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी पुस्तक से

नौकर—स्वामी के आवश्यक गुण

नौकर में चार गुण हों :—

१. विनम्र, २. आज्ञाकारी, ३. ईमानदार, ४. स्वामी हितैषी। इनमें से एक भी कम हो तो, स्वामी निश्चिन्त और गौरवयुक्त नहीं रह सकता।

स्वामी में भी चार गुण हों :—

१. सभ्यता से बोलने वाला, पूरा निरीक्षक, ३. नेयनियत, ४. नौकर को अपने जैसा आदमी समझने वाला। इनमें से एक भी कम हो, तो नौकर कभी खुश नहीं रह सकता।

—वीतराग महाराज पू. आश्रित जी महाराज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.